प्राकृत भारती पुष्प—51

उत्तराध्ययन-चयनिका

सम्पादक :

डॉ. कमलचन्द सोगाणी
सेवानिवृत्त प्रोफेसर, दर्शन-विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय
उदयपुर (राजस्थान)

प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर
जैन श्वे. नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ, मेवानगर

प्रकाशक :
देवेन्द्रराज मेहता
सचिव, प्राकृत भारती अकादमी,
3826, यति श्यामलालजी का उपाश्रय,
मोतीसिंह भोमियों का रास्ता,
जयपुर-302 003 (राज.)

पारसमल भंसाली
अध्यक्ष, श्री जैन श्वे. नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ
पो. मेवानगर, स्टे. बालोतरा,
पि. को. 344025, जिला बाड़मेर (राज.)

☐ द्वितीय संस्करण : 1994
तृतीय संस्करण : 1996
चतुर्थ संस्करण : 1998

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

☐ मूल्य : 25.00 पच्चीस रूपये

☐ मुद्रक :
अनिता प्रिन्टर्स
13, मीरा मार्ग, गोविन्द नगर (पूर्व),
आमेर रोड़, जयपुर-302 002
फ़ोन : 631133, 635357

UTTARADHAYAYAN-CHAYANIKA/PHILOSOPHY
KAMAL CHAND SOGANI, 1989

स्व. पं. सुखलालजी सिंघवी
एवं
स्व. पं. चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ
को
सादर समर्पित

अनुक्रमणिका

क्रमांक	पृष्ठ
1. प्रकाशकीय	v-vii
2. प्राक्कथन	viii-xii
3. प्रस्तावना	xiii-xxiv
4. उत्तराध्ययन-चयनिका की गाथाएं एवं हिन्दी अनुवाद	1-61
5. व्याकरणिक विश्लेषण	62-110
6. उत्तराध्ययन-चयनिका एवं उत्तराध्ययन सूत्र-क्रम	111-112

प्रकाशकीय

डॉ. कमलचन्दजी सोगाणी संकलित "उत्तराध्ययन-चयनिका को प्राकृत भारती अकादमी और श्री जैन श्वेताम्बर नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ के संयुक्त प्रकाशन के रूप में प्राकृत भारती का 51 वां पुष्प सुज्ञ पाठकों के कर कमलों में प्रस्तुत करते हुए हार्दिक प्रसन्नता है।

जैनागमों में मूल सूत्रों का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है और उसमें भी उत्तराध्ययन सूत्र का प्रथम स्थान है। विशेषत: भाषा, विपय और शैली की दृष्टि से भाषाविद् इसे अत्यन्त प्राचीन मानते हैं। इसका रचना/संकलन काल भी आचारांग सूत्र एव सूत्रकृताग के परवर्तीकाल का और अन्य आगमों से पूर्ववर्ती माना जाता है। इस ग्रन्थ के अनेक स्थलों की तुलना बौद्धों के सुत्तनिपात, जातक और धम्मपद आदि प्राचीन ग्रन्थों से की जा सकती है।

इस सूत्र में 36 अध्ययन हैं। आचार्य भद्रबाहु रचित उत्तराध्ययन की नियुक्ति के अनुसार इसके 36 अध्ययनों में कुछ अंग सूत्रों में से लिये गये हैं, कुछ जिनभाषित हैं, कुछ प्रत्येकबुद्धों द्वारा प्ररूपित हैं और कुछ संवाद रूप में लिखे गये हैं।

उत्तराध्ययन में संयममय जीवन जीने की कला की सूक्ष्म अभिव्यक्ति सर्वत्र परिलक्षित होती है। साधनामय जीवन की प्रेरणा का स्रोत, अनुशासित जीवन और आचार-प्रधान होने के कारण इस ग्रन्थ का अत्यन्त प्रचार-प्रसार रहा है। मूर्धन्य मनीषियों–वादिवेताल शान्तिसूरि, नेमिचन्द्रसूरि, ज्ञानसागरसूरि, विनयहंस, कीर्तिवल्लभ गणि, कमलसंयमोपाध्याय, तपोरत्न, माणिक्यशेखरसूरि, गुणशेखर, लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय, भावविजयगणि, वादी हर्षनन्दन, धर्ममन्दिर, जयकीर्ति, कमललाभ आदि अनेकों ने संस्कृत में टीकायें, भाषा में बालावबोध आदि लिखे हैं। आज भी अंग्रेजी, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं में इसके अनेकों अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं।

ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ से जन-साधारण भी परिचित हो जाये और अनुशासित जीवन को अपनाकर अनासक्ति पूर्ण आत्मसाधना की ओर अग्रसर हो सके—इस दृष्टि से श्री सोगाणी जी ने यह चयनिका तैयार की है।

श्री सोगाणी जी ने अपनी विशिष्ट शैली में ही उत्तराध्ययन की 152 गाथाओं का हिन्दी अनुवाद, व्याकरणिक विश्लेषण और विस्तृत प्रस्तावना के साथ इसका सम्पादन कर प्रकाशनार्थ प्राकृत भारती को प्रदान की एतदर्थ हम उनके हृदय से आभारी हैं।

हमारे अनुरोध को स्वीकार कर श्री रणजीतसिंहजी कूमट, आई. ए. एस. ने इसका प्राक्कथन लिखा, अतः हम उनके प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं।

हमें पूर्ण विश्वास है कि प्राकृत भाषा के विज्ञ पाठक गीता सदृश इस चयनिका के माध्यम से उत्तराध्ययन सूत्र का हार्द समझकर

जाति-पांति और साम्प्रदायिकता रहित विशुद्ध विनय-प्रधान अनुशासित जीवन को अवश्य अपनायेंगे तथा भगवान महावीर की वाणी को हृदय में प्रतिक्षण अनुगुंजित करते रहेंगे।

"समयं गोयम ! मा पमायए"

हे गौतम ! समय/अवसर को समझ और क्षण मात्र भी प्रमाद मतकर ।

पारसमल भंसाली	म. विनयसागर	देवेन्द्रराज मेहता
अध्यक्ष	निदेशक	सचिव
श्री जैन श्वे नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ	प्राकृत भारती अकादमी	प्राकृत भारती अकादमी
मेवानगर	जयपुर	जयपुर

प्राक्कथन

उत्तराध्ययन सूत्र जैन आगमों में प्रथम मूल सूत्र है और यदि इसे जैन धर्म की "गीता" कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। जैन शास्त्रों व दर्शन के प्रति जिज्ञासु व्यक्ति यह मांग करते हैं कि किसी एक पुस्तक का नाम बतायें जिससे जैन दर्शन की संपूर्ण जानकारी मिल सके तो सहज ही उत्तराध्ययन सूत्र ध्यान में आता है जो जैन दर्शन का सार प्रस्तुत करता है। वैसे तो दशवैकालिक सूत्र और उमास्वाति रचित तत्त्वार्थसूत्र भी जैन दर्शन का परिचय देते हैं लेकिन उत्तराध्ययन सूत्र की तुलना नहीं कर सकते। वैसे भी व्यवहार, वाचन व उद्धरण की दृष्टि से उत्तराध्ययन का जितना प्रचलन है उतना किसी आगम का नहीं है। कुछ श्वेताम्बर परम्पराओं में दीपावली के दूसरे दिन उत्तराध्ययन सूत्र का संपूर्ण वाचन मुनिगण खड़े होकर करते हैं। इसके पीछे विश्वास एवं मान्यता है कि इस सूत्र में जो भी गाथाएं हैं, वे सब भगवान महावीर के अंतिम उपदेश हैं जो उन्होंने निर्वाण से पूर्व दिये थे। अतः इनका वाचन निर्वाण के दूसरे दिन किया जाता है।

उत्तराध्ययन सूत्र का नाम उत्तराध्ययन क्यों रखा? इस पर भी कई टिप्पणियां हैं। यह मूल में भगवान महावीर द्वारा रचित

है या संकलित है ? इस पर मतभेद है, परन्तु इसमें कोई मतभेद नहीं कि जो सूत्र इसमें दिये हैं वे जैन दर्शन का संपूर्ण सार प्रस्तुत करते हैं। वे हर महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देते हैं। और, किसी ने कहा कि भगवान महावीर ने छत्तीस प्रश्नों के उत्तर बिना पूछे छत्तीस अध्यायों में दिये हैं। इन दोनों दृष्टिकोण से "उत्तर" का अध्ययन करने से उत्तराध्ययन कहा जाता है।

यह शास्त्र "विनय" के अध्याय से प्रारंभ होता है। विनय का साधारण अर्थ नम्रता या आज्ञापालन से लिया जाता है। परन्तु विनय का अर्थ इससे कहीं अधिक व्यापक और गहरा है। विनय व्यक्ति का शील और आचार है। यह धर्म और जीवन का मूल है। जहाँ अहं है वहाँ विनय नहीं। जहाँ विनय नहीं वहाँ धर्म नहीं। जहाँ धर्म नहीं वहाँ जीवन नहीं। इस तरह विनय धर्म और जीवन का मूल है, परन्तु इसके ऊपरी अध्ययन से लगता है कि केवल गुरु-आज्ञा को माननें में ही विनय है और यह गुरु-पद्धति का पोषक है। परन्तु, गहराई से देखें तो गुरु-विनय के साथ वाणी और शरीर का संयम व अपनी कामनाओं को वश में करना यह सब विनय के भाग हैं। अतः ऊपरी रूप से गुरु आज्ञा का मानना ही विनय न होकर पूरे शील और सयम के आचरण को विनय मानना चाहिये।

इसी प्रकार परिषह, श्रद्धा, प्रमाद, सकाम मरण, आदि विषयों पर मार्मिक विवेचन है और इनके अनुसरण से व्यक्ति आत्म-कल्याण के मार्ग पर आसानी से बढ़ सकता है। इस शास्त्र में संवाद की शैली से कई गूढ विषयों को प्रतिपादित किया गया है। राजा नमि और इन्द्र, इक्षुकार नगर में दो बालक और उनके पुरोहित ब्राह्मण माता-पिता, चित्त और संभूत भाईयों में संवाद वैराग्य और संसार की

नश्वरता पर प्रकाश डालते हैं। इनको पढ़कर धन के पीछे लग रही अंधी दौड़ पर मनुष्य विचार करे कि क्या यह दौड़-धूप सार्थक है? इषुकारीय नगरी का पूरा पुरोहित परिवार दीक्षा लेता है और उसका अपार धन राज खजाने में आता है तो उस नगरी के राजा से रानी सहज ही प्रश्न पूछती है कि 'यह धन कहाँ से आ रहा है! जब उसको पता लगता है कि 'पुरोहित परिवार के दीक्षा लेने पर धन स्वामित्व विहीन होनें से राज खजाने में आ रहा है' तो तुरन्त रानी राजा से कहती है, "कोई वमन किये भोजन को ग्रहण करना पसन्द नहीं करता और आप ब्राह्मण द्वारा त्यागे धन को ग्रहण कर रहे हैं तो यह अच्छा नहीं। धन की पिपासा अनन्त है और समस्त जगत का धन भी दे दें तो यह शान्त न होगी। यह धन मृत्युपरान्त काम नहीं आयेगा। आप काम-भोगों का त्याग कर धर्म का मार्ग लो वह साथ चलेगा।" इस उपदेश से राजा भी प्रभावित हुआ और पुरोहित परिवार के साथ राजा और रानी भी संसार भोगों को त्याग कर संयम मार्ग पर चल पड़े। इस प्रकार के आख्यान, संवाद और सरल उदाहरण से प्रेरित करने वाले सूत्र उत्तराध्ययन में प्रचुर मात्रा में हैं और इनका सतत अध्ययन एवं स्वाध्याय, जीवन को सही मार्ग पर चलाने में व आत्म-कल्याण में मदद करता है।

चांडालकुल उत्पन्न हरिकेश मुनि और ब्राह्मणों में हुए संवाद से यह पुष्टि होती है कि जैन धर्म वर्ण व्यवस्था में विश्वास नहीं करता और प्रत्येक व्यक्ति को धर्म-यज्ञ का अधिकार है और किसी वर्ग विशेष की थाती नहीं है। ब्राह्मण कौन है और यज्ञ किसे कहते हैं? इसका प्रतिपादन इस अध्याय में बहुत ही सुन्दर रूप से हुआ है। ब्राह्मण जन्म से नहीं कर्म से होता है। यज्ञ और स्थान बाहरी न होकर आन्तरिक होने चाहिये। तप वास्तविक अग्नि है, जीव अग्नि स्थान है, योग कलछी है, शरीर अग्नि का प्रदीप्त करने वाला

साधन है, कर्म ईंधन है, और संयम शांति मन्त्र है। इन साधनों से यज्ञ करना ही प्रशस्त यज्ञ है।

एक युवा मुनि ने महा वैभवशाली राजा श्रेणिक को भी यह अनुभव करा दिया कि वह अनाथ है। राजा नें तरुण मुनि से पूछा "इस भोग भोगनें की वय में आप मुनि बने हैं तो क्या दुःख है, बतायें।" तब मुनि ने कहा कि 'वे अनार्थ हैं।' राजा नें कहा "मैं सब अनाथों का नाथ हूँ", तब मुनि ने कहा कि 'आप स्वयं ' अनाथ" हैं।' राजा अवाक् रह गया, तब अनाथ की परिभाषा से राजा को अवगत कराया कि जब पीड़ा, बुढापा और काल आता है तो कोई किसी की सहायता नहीं कर सकता।

केशी-गौतम संवाद से भगवान पार्श्वनाथ के समय के साधुओं और भगवान महावीर के साधुओं के बीच वेष व समाचारी के भेद से जो शंकाएं थी उनको दूर किया और धर्म की समय-समय पर प्रज्ञा मे समीक्षा करना यथेष्ट बताया। देश, काल और भाव से व्यवहार में परिवर्तन आता है, परन्तु प्रज्ञा से समीक्षा कर परिवर्तन होता है तो मूलभूत सिद्धान्त अपरिवर्तित रहते हुए भी व्यवहार में यथेष्ट परिवर्तन किया जा सकता है।

वैराग्य, धन व भोगों की नश्वरता पर जितने मार्मिक उदाहरण व सूत्र इस शास्त्र में हैं वे सब आत्म-कल्याण के साधन स्वरूप हैं। वाणी-विलास से कर्म-मीमांसा और जगत् स्वरूप के विशद विवेचन किये जा सकते है लेकिन धर्म और आत्मकल्याण का एक ही सूक्ष्म और सरल मार्ग है जिस पर चलने से ही कल्याण होता है और वह है वैराग्य या अनासक्ति। जब तक आसक्ति है तब तक दुःख है और यह संसार का भव-भ्रमण है। आसक्ति को समाप्त करते ही

संसार-चक्र भी समाप्त हो जाता है। इस बात को विभिन्न उदाहरणों से इस शास्त्र में समझाया है। उत्तराध्ययन इसीलिये "गीता" है कि इसमें धर्म के मूल मन्त्र को प्रतिपादित किया है और उसे रोचक ढंग से प्रस्तुत कर आत्म-कल्याण के मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित किया है।

डॉ. कमलचन्द सोगाणी ने विभिन्न शास्त्रों और ग्रंथों की चयनिकाएं रचित की हैं। आचारांग की चयनिका सर्व प्रथम पढ़ी और बहुत ही प्रेरणादायक व उपयोगी लगी। इससे जैनागमों के प्रथम आगम आचारांग से परिचय हुआ। इसके बाद दशवैकालिक, समणसुत्तं व गीता की चयनिका भी प्रकाशित हुई। अब उत्तराध्ययन की चयनिका प्रस्तुत की है। यह जन-साधारण के लिये बहुत ही हितकारी पुस्तक है। संक्षेप में पूरे शास्त्र का सार कुछ चुनी हुई गाथाओं से पहुंचाने का प्रयास है। इसके साथ प्राकृत के शब्दों का अर्थ और व्याकरणात्मक विश्लेषण भी प्राकृत से अनजान व्यक्तियों को प्राकृत भाषा से परिचय भी कराता है। यह डॉ. सोगाणी की प्रशंसनीय कृति है और सभी मुमुक्षु व्यक्ति इसका लाभ उठायेंगे यह आशा की जा सकती है।

प्राकृत भारती ने कई दुर्लभ पुस्तकों का प्रकाशन किया है। साथ ही इस प्रकार की चयनिका व अन्य ग्रन्थों से जैन व प्राकृत के बारे में जन साधारण में प्रचार प्रसार करने का श्लाघनीय प्रयास किया है। इसके लिये इस संस्था के मूल प्रेरणा स्रोत श्री देवेन्द्रराज मेहता व मुख्य कार्यकर्ता व निदेशक महोपाध्याय श्री विनयसागरजी को साधुवाद है जिनके प्रयासों से यह साहित्य जन साधारण तक पहुंच रहा है।

इस चयनिका को पढ़कर मूल सूत्र उत्तराध्ययन सूत्र को संपूर्ण रूप से पढने की जिज्ञासा जागेगी ऐसी आशा करता हूँ।

रणजीतसिंह कूमट

प्रस्तावना

यह सर्वविदित है कि मनुष्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था से ही रंगों को देखता है, ध्वनियों को सुनता है, स्पर्शों का अनुभव करता है, स्वादों को चखता है तथा गंधों को ग्रहण करता है। इस तरह उसकी सभी इन्द्रियां सक्रिय होती हैं। वह जानता है कि उसके चारों ओर पहाड़ हैं, तालाब हैं, वृक्ष हैं, मकान हैं मिट्टी के टीले हैं, पत्थर हैं इत्यादि। आकाश में वह सूर्य, चन्द्रमा और तारों को देखता है। ये सभी वस्तुएं उसके तथ्यात्मक जगत का निर्माण करती हैं। इस प्रकार वह विविध वस्तुओं के बीच अपने को पाता है। उन्हीं वस्तुओं से वह भोजन, पानी, हवा आदि प्राप्त कर अपना जीवन चलाता है। उन वस्तुओं का उपयोग अपने लिये करने के कारण वह वस्तु-जगत का एक प्रकार से सम्राट बन जाता है। अपनी विविध इच्छाओं की तृप्ति भी बहुत सीमा तक वह वस्तु-जगत से ही कर लेता है। यह मनुष्य की चेतना का एक आयाम है।

धीरे-धीरे मनुष्य की चेतना एक नया मोड़ लेती है। मनुष्य समझने लगता है कि इस जगत में उसके जैसे दूसरे मनुष्य भी हैं, जो उसकी तरह हँसते हैं, रोते हैं, सुखी-दुःखी होते हैं। वे उसकी तरह विचारों, भावनाओं और क्रियाओं की अभिव्यक्ति करते हैं। चूंकि

मनुष्य अपने चारों ओर की वस्तुओं का उपयोग अपने लिये करने का अभ्यस्त होता है, अतः वह अपनी इस प्रवृत्ति के वशीभूत होकर मनुष्यों का उपयोग भी अपनी आकांक्षाओं और आशाओं की पूर्ति के लिए ही करता है। वह चाहने लगता है कि सभी उसी के लिये जीएँ। उसकी निगाह में दूसरे मनुष्य वस्तुओं से अधिक कुछ नहीं होते हैं। किन्तु, उसकी यह प्रवृत्ति बहुत समय तक चल नहीं पाती है। इसका कारण स्पष्ट है। दूसरे मनुष्य भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति में रत होते हैं। इसके फलस्वरूप उनमें शक्ति-वृद्धि की महत्वाकांक्षा का उदय होता है। जो मनुष्य शक्ति-वृद्धि में सफल होता है, वह दूसरे मनुष्यों का वस्तुओं की तरह उपयोग करने में समर्थ हो जाता है। पर मनुष्य की यह स्थिति घोर तनाव की स्थिति होती है। अधिकांश मनुष्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इस तनाव की स्थिति में से गुजर चुके होते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह तनाव लम्बे समय तक मनुष्य के लिए असहनीय होता है। इस असहनीय तनाव के साथ-साथ मनुष्य कभी न कभी दूसरे मनुष्यों का वस्तुओं की तरह उपयोग करने में असफल हो जाता है। ये क्षण उसके पुनर्विचार के क्षण होते हैं। वह गहराई से मनुष्य-प्रकृति के विषय में सोचना प्रारम्भ करता है, जिसके फलस्वरूप उसमें सहसा प्रत्येक मनुष्य के लिए सम्मान-भाव का उदय होता है। वह अब मनुष्य-मनुष्य की समानता और उसकी स्वतन्त्रता का पोषक बनने लगता है। वह अब उनका अपने लिए उपयोग करने के बजाय अपना उपयोग उनके लिये करना चाहता है। वह उनका शोषण करने के स्थान पर उनके विकास के लिये चिन्तन प्रारम्भ करता है। वह स्व-उदय के बजाय सर्वोदय का इच्छुक हो जाता है। वह सेवा लेने के स्थान पर सेवा करने को महत्व देने लगता है। उसकी यह प्रवृत्ति उसे तनाव-मुक्त कर देती है और वह एक प्रकार से विशिष्ट

व्यक्ति वन जाता है। उसमें एक असाधारण अनुभूति का जन्म होता है। इस अनुभूति को ही हम मूल्यों की अनुभूति कहते हैं। वह अब वस्तु-जगत में जीते हुए भी मूल्य-जगत में जीने लगता है। उसका मूल्य-जगत में जीना धीरे-धीरे गहराई की ओर बढ़ता जाता है। वह अब मानव-मूल्यों की खोज में संलग्न हो जाता है। वह मूल्यों के लिए ही जीता है और समाज में उसकी अनुभूति बढ़े इसके लिये अपना जीवन समर्पित कर देता है। यह मनुष्य की चेतना का एक दूसरा आयाम है।

उत्तराध्ययन में चेतना के दूसरे आयाम की सबल अभिव्यक्ति हुई है। इसका मुख्य उद्देश्य एक ऐसे समाज की रचना करना है जिसमें इन्द्रिय-भोगों की इच्छाओं पर अंकुश लगे और संयममय जीवन के प्रति आकर्षण बढ़े। यह सर्व-अनुभूत तथ्य है कि इन्द्रिय-भोगों में रमण करने से इन्द्रिय-भोगों में रमण करने की इच्छा बारबार उत्पन्न होती है। इच्छा से मानसिक तनाव उत्पन्न होता है जो दुःख का कारण बन जाता है। उत्तराध्ययन का कहना है कि इन्द्रिय-भोग निश्चय ही अनर्थों की खान होते हैं, क्षण भर के लिए सुखमय तथा बहुत समय के लिए दुःखमय होते हैं/अति दुःखमय तथा अल्प सुखमय हैं वे संसार-सुख और मोक्ष-सुख दोनों के विरोधी बने हुए रहते हैं (57)। यह ध्यान देने योग्य है कि जिसकी इच्छा विदा नहीं हुई है, ऐसा मनुष्य रात-दिन मानसिक तनाव से दुःखी रहता है (58)। सच है वे मनुष्य दुर्बुद्धि हैं जो भोगों में अत्यन्त लालायित होते हैं। इस कारण से वे भोगों से चिपके रहते हैं, जैसे मिट्टी का गीला गोला दिवार पर चिपक जाता है (72, 73)। ऐसा विलासी व्यक्ति अशान्त रहता है और मानसिक तनाव में ही भटकता रहता है (71)। इस तरह से मूर्ख मनुष्य भोगों में मूर्च्छित होकर इच्छारूपी अग्नि के द्वारा जलाए जाते हैं (66)।

जो मनुष्य इन्द्रिय-भोगों की लालसा में डूबे रहते हैं, वे भोग-सामग्री को एकत्रित करने में लगे रहते हैं। उनका धन इसी कार्य में खर्च होता रहता है। धन की कमी होने पर वे पाप-कर्मों द्वारा धन को ग्रहण करने लगते हैं (20)। वे इस बात को समझ नहीं पाते हैं कि दुष्कर्मों के फल से छुटकारा संभव नहीं है (21)। उत्तराध्ययन का शिक्षण है कि दुष्कर्मों में फंसे हुए व्यक्ति की रात्रियां व्यर्थ जाती हैं (60)।ऐसा व्यक्ति मृत्यु के निकट आने पर शोक करता है, जैसे ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर उतरा हुआ गाड़ीवान धुरी के खण्डित होने पर शोक करता है (26, 27)। जैसे हारा जुआरी भय से अत्यन्त कांपता है, वैसे ही दुष्कर्मी मनुष्य मरण की निकटता में भय से अत्यन्त कांपता है और वह मूर्च्छित अवस्था में ही मरण को प्राप्त होता है (28)।

यहां पर ध्यान देने योग्य है कि इन्द्रिय-भोगों में लीन व्यक्ति लोभ का शिकार होता है। लोभ मनुष्य में ऐसी वृत्ति को जन्म देता है, जिसके कारण वह धन आदि प्राप्त करने की इच्छाओं को बढ़ाता चलता है। उत्तराध्ययन का कहना है कि लोभी मनुष्य सोने, चांदी के असंख्य पर्वत भी प्राप्त कर ले तो भी उसकी तृप्ति असंभव है, क्योंकि इच्छा आकाश के समान अन्तरहित होती है। (38) इन व्यक्तियों में स्वार्थपूर्ण वृत्ति इतनी प्रबल होती है कि वे दूसरे मनुष्यों को भी इन्द्रिय-भोगों में ही जोतते हैं। इन्हें स्व-पर कल्याण का कोई भान ही नहीं होता है (32)। इस तरह से ये व्यक्ति पाशविक वृत्तियों के दास बने हुए जीते हैं (19)। ये व्यक्ति सोए हुए कहे जा सकते हैं 24।ऐसे व्यक्ति मूर्च्छित होते हैं और मानसिक तनावों से ग्रसित रहते हैं। सम्पूर्ण लोक की प्राप्ति भी उन्हे संतुष्ट नहीं कर सकती है (34)। इन्हें इस बात की समझ नहीं होती है कि इन्द्रिय-भोग परिणाम में किंपाक-फल से मिलते-जुलते होते हैं। किंपाक (प्राण नाशकवृक्ष)

के फल रस और वर्ण में तो मनोहर होते हैं, किन्तु वे खाने पर जीवन को समाप्त कर देते हैं (92)।

सदियों के मानव-अनुभव ने हमें सिखाया है कि भोगमय जीवन जीने से मनुष्य तनाव-मुक्त नहीं हो सकता है। भोगेच्छाओं से उत्पन्न मानसिक तनाव को मिटाने के लिए मनुष्य जितना-जितना भोगों का सहारा लेगा, उतना-उतना मानसिक तनाव गहरी जड़ें पकड़ता जायेगा। मानसिक तनाव की उपस्थिति में मनुष्य जीवन की गहराईयों की ओर नहीं मुड सकेगा और छिछला जीवन जीने को ही सब कुछ समझता रहेगा। उत्तराध्ययन का कहना है कि जो मनुष्य शरीर में, कीर्ति में तथा रूप में आसक्त होते हैं, वे दुःखों से घिरे रहते हैं (31)। मनुष्यों का जो कुछ भी कायिक और मानसिक दुःख है, वह विषयों में अत्यन्त आसक्ति से उत्पन्न होता है (91)। जो रूपों (भोगों) में तीव्र आसक्ति रखता है, वह विनाश को प्राप्त होता है (94)। इस तरह इन्द्रियों के विषय और मन के विषय आसक्त मनुष्य के लिए दुःख का कारण होते हैं (96)। यह दुःख मानसिक तनाव के कारण उत्पन्न होता है।

भोगेच्छाओं से उत्पन्न मानसिक तनावात्मक दुःखों को मिटाने के लिए भोगेच्छाओं को मिटाना जरूरी है। इसके लिए संयममय जीवन आवश्यक है। उत्तराध्ययन का शिक्षण है कि व्यक्ति चाहे ग्राम अथवा नगर में रहे, किन्तु वहाँ उसे संयत अवस्था में ही रहना चाहिए (44)। जैसे उज्जड़ बैल वाहन को तोड़ देते हैं, वैसे ही संयम में दुर्बल व्यक्ति जीवन-यान को छिन्न-भिन्न कर देते हैं (74)। जो विषयों से नहीं चिपकते हैं, वे अविलासी व्यक्ति मानसिक तनावरूपी मलिनता से छुटकारा पा जाते हैं (73,71)। जैसे सूखा गोला दिवार

से नहीं चिपकता है, वैसे ही संयमी व्यक्ति विषयों से नहीं चिपकते हैं (72, 73)। यह यहां समझना चाहिए कि नये मानसिक तनावों को रोकने से, पुराने संस्कारात्मक मानसिक तनाव प्रयास से धीरे-धीरे समाप्त किये जा सकते हैं। उत्तराध्ययन का कहना है कि यदि बड़े तालाब में जल का आना पूर्ण रूप से रोक दिया जाए, तो एकत्रित जल को बाहर निकालने से तालाब खाली किया जा सकता है। उसी प्रकार संयमी मनुष्य में अशुभ कर्मों (मानसिक तनावों) का आगमन नहीं होने के कारण करोड़ों जन्मों के संचित कर्म (मानसिक तनाव] तप [संयम साधना] के द्वारा नष्ट किये जा सकते हैं (84, 85)। उत्तराध्ययन का कथन है कि कर्म [मानसिक तनाव] विषयों में मूर्च्छा से उत्पन्न होता है, जो दुःखों का जनक है (88)। जिसके मन में तृष्णा नहीं है उसके द्वारा मूर्च्छा दूर की गई है। जिसके मन में लोभ नहीं है उसके द्वारा तृष्णा दूर की गई है तथा जिसके मन में कोई वस्तु नहीं है उसके द्वारा लोभ दूर किया गया है (89)।

इन्द्रिय-भोगों से दूर हटने की प्रेरणा उसे [व्यक्ति को] इस जगत से ही प्राप्त हो सकती है। यह जगत मनुष्य को ऐसे अनुभव प्रदान करने के लिए सक्षम है, जिनके द्वारा वह संयम के लिए प्रेरणा प्राप्त कर सकता है। मनुष्य कितना ही इन्द्रिय-भोगों में लीन रहे फिर भी मृत्यु की अनिवार्यता, भोगों की नश्वरता, मानवीय सम्बन्धों की सीमा, शारीरिक कष्ट की अनुभूति, मनुष्य-जीवन की प्राप्ति और उसमें सही मार्ग मिलने की दुर्लभता उसको एक बार जगत के रहस्य को समझने के लिए बाध्य कर ही देते हैं। यह सच है कि अधिकांश मनुष्यों के लिए यह जगत इन्द्रिय-तृप्ति का ही माध्यम बना रहता है, किन्तु कुछ मनुष्य ऐसे संवेदनशील होते हैं कि यह जगत उनको संयम ग्रहण करने के लिए प्रेरित कर देता है।

मृत्यु की अनिवार्यता को समझाने के लिए उत्तराध्ययन का कहना है कि जैसे सिंह हरिण को पकड़ कर ले जाता है, वैसे ही मृत्यु अन्तिम समय में मनुष्य को निस्संदेह पकड़कर ले जाती है(53)। वह खेत, धन-धान्य और ... को छोड़कर अकेला मृत्यु को प्राप्त कर दूसरे जन्म के लिए प्रस्थान करता है (55, 64)। वह यह बात बोलता ही रहता है कि "यह वस्तु मेरी है और यह वस्तु मेरी नहीं है" और काल उसे निगल जाता है (59)। यहाँ यह समझना चाहिए कि मृत्यु के मुख में पहुँचने पर वह व्यक्ति अत्यन्त दुःखी होता है जिसने इस जीवन में शुभ कार्यों को नहीं किया है (52)। इस तरह से मृत्यु की अनिवार्यता संयम ग्रहण करने के लिए प्रेरणा दे सकती है। कुछ मनुष्य इससे प्रेरणा प्राप्त करके संयम की साधना में लग जाते हैं।

जिन इन्द्रिय-भोगों में लीन होने के लिए मनुष्य आकर्षित होता है वे भी नश्वर हैं (56)। कभी वे धनाभाव के कारण प्राप्त नहीं किए जा सकते हैं तो कभी वे शारीरिक क्षीणता के कारण भोगे नहीं जा सकते हैं।

मृत्यु की अनिवार्यता और इन्द्रिय भोगों की नश्वरता के साथ-साथ यदि मनुष्य को सम्बन्धों की सीमा का ज्ञान हो जाए तो भी वह संयम की ओर झुक सकता है। जिन सम्बन्धों के लिए वह लोक में अशुभ कर्म करता है, उनका फल-भोग उसी को करना पड़ता है (22), क्योंकि दुखात्मक कर्म कर्ता का ही अनुसरण करते हैं (54)।

सम्बन्धों की कमी का ज्ञान मनुष्य को उस समय बहुत ही स्पष्ट होता है जब व्यक्ति किसी शारीरिक कष्ट में फँस जाता है।

दूसरे घने सम्बन्धी उसकी मदद करने के लिए दौड़ते हैं, फिर भी यदि उसका कष्ट न मिटे तो वह असहाय अनुभव करता है। इसमें सन्देह नहीं कि व्यक्तियों का सहारा उसके लिए बहुत ही महत्वपूर्ण होता है किन्तु यदि सभी प्रकार के उपचार से उसका शारीरिक दुःख न मिटे तो उसका भोग व्यक्ति को स्वयं को ही करना पड़ता है। इस तरह से वह अनाथ की कोटि में आ जाता है (104 से 125)। अनाथता की यह वास्तविक अनुभूति उसको अनासक्ति का पाठ पढ़ा सकती है। वे लोग जो शारीरिक कष्ट की इस अनुभूति के प्रति सवेदनशील हो जाते हैं, वे संयम ग्रहण करने की प्रेरणा प्राप्त कर लेते हैं।

उत्तराध्ययन का कहना है कि मनुष्य जीवन की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। वह यदि प्राप्त भी हो भी जाये तो सही मार्ग का मिलना दुर्लभ रहता है। सयम के महत्व का श्रवण, उसमें श्रद्धा तथा सयम में सामर्थ्य ये तीनों भी कठिन ही रहते हैं (11 से 16)। इसलिए उत्तराध्ययन का कथन है कि जिसने मनुष्यत्व को प्राप्त किया है तथा जो संयम रूपी धर्म को सुनकर उसमें श्रद्धा करता है, वह संयम में सामर्थ्य प्राप्त करके मानसिक तनाव से मुक्त हो जाता है (17)।

इस तरह से जब मनुष्य को इन्द्रिय-भोगों की निस्सारता का भान होने लगता है, तो वह संयम मार्ग की ओर चल पड़ता है। मृत्यु की अनिवार्यता, भोगों की नश्वरता, मानवीय सम्बन्धों की सीमा शारीरिक कष्ट की अनुभूति, मनुष्य जीवन की प्राप्ति और उसमें सही मार्ग मिलने की दुर्लभता—ये सब मनुष्य को संयम के लिए प्रेरणा देकर उसे तनावात्मक दुःख से मुक्त कर सकते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस जगत में संयम धारण करने के लिए प्रेरणाएँ उपलब्ध हैं। उनसे प्रेरित होकर व्यक्ति संयम की ओर मुड़ता है। उस व्यक्ति के लिए उत्तराध्ययन का शिक्षण है कि स्व को जीतना ही परम विजय है (36)। इसलिए यह कहा गया है कि अंतरंग राग-द्वेष से ही युद्ध किया जाना चाहिए, क्योंकि अपनी राग-द्वेषात्मक वृत्ति को जीतकर ही व्यक्ति मानसिक तनावात्मक दुःख से मुक्त हो सकता है (37)। वस्तुओं और व्यक्तियों में आसक्ति का त्याग इस जीत के लिए आवश्यक शर्त है (43)। उत्तराध्ययन का शिक्षण है कि इन्द्रियों के विषय आसक्त मनुष्य के लिए दुःख का कारण होते हैं। अतः मनुष्यों के लिए संयम रूपी धर्म आश्रय गृह है, सहारा है, रक्षा स्थल है तथा उत्तम शरण है (69)।

संयम की कला सीखने के लिए व्यक्ति को विनयवान होना अत्यन्त आवश्यक है। उत्तराध्ययन का कहना है कि जो गुरु की सेवा करने वाला है, जो उसकी आज्ञा और उसके उपदेश का पालन करने वाला है, जो शरीर के विभिन्न अंगों की चेष्टा से तथा चेहरे के रंग-ढंग से उसके आन्तरिक विचार को समझ लेता है, वह विनीत कहा जाता है। विनयवान व्यक्ति गुरु के कठोर अनुशासन को भी हितकारी मानते हैं (8)।

संयम धारण करने के लिए हिंसा का त्याग किया जाना चाहिए। प्रत्येक जीव के प्राणों को अपने समान प्रिय जानकर उसका घात नहीं करना चाहिए (30)। जो प्राणियों का रक्षक होता है, वह सम्यक् प्रवृत्ति वाला कहा जाता है (33)। सामायिक, प्रायश्चित्त, मैत्रीभाव, आर्जवता, वीतरागता का अभ्यास, चित्त-निरोध तथा

धर्म कथा—ये सब संयममय जीवन जीने के लिए महत्वपूर्ण हैं। सामायिक के द्वारा अशुभ प्रवृत्ति से निवृत्ति होती है (75)। प्रायश्चित्त से आचरण में निर्दोषता आती है और साधन निर्मल बनते हैं (76)। मैत्री भाव से निर्भयता उत्पन्न होती है (77)। आर्जवता (निष्कपटता) से काया की सरलता, मन का खरापन, भाषा की मृदुता और व्यवहार में अधूर्तता उत्पन्न होती है (83)। वीतरागता के अभ्यास से व्यक्ति राग-सम्बन्धों को तोड़ देता है और इन्द्रिय विषयों से निर्लिप्त होकर अनासक्त होता है (82, 81)। चंचल चित्त का निरोध करने से व्यक्ति संयमरूपी लक्ष्य के प्रति समर्पित होता है (80)। धर्मकथा करने से व्यक्ति संयममय जीवन में आस्थावान बनता है और संयम को प्रभाव-युक्त करता है (78)। उत्तराध्ययन में कहा गया है कि ऐसे व्यक्ति की रात्रियाँ सफल कही जा सकती हैं (61)। और वह संसार समुद्र को (मानसिक तनावरूपी दुःखों को) पार कर जाता है (70)। उन लोगों को संयम मार्ग पर चलने में कठिनाई होती है जो अहंकारी, क्रोधी, रोगी और आलसी होते हैं (46)।

संयम की पूर्णता होने पर व्यक्ति लाभ-हानि, मान-अपमान, निन्दा-प्रशंसा आदि द्वन्द्वों में तटस्थ हो जाता है (68)। वह अचल सुख तथा स्वतन्त्रता प्राप्त करता है (86)। उसके चित्त पर आसक्तिरूपी शत्रु आक्रमण नहीं करते हैं (90)। ऐसा व्यक्ति संसार के मध्य रहता हुआ भी दुःख-रहित होता है (95)। इन्द्रिय-विषय उसमें आकर्षण और विकर्षण उत्पन्न नहीं करते है (98)।

उत्तराध्ययन चयनिका के उपर्युक्त विषय-विवेचन से स्पष्ट है कि उत्तराध्ययन में संयममय जीवन जीने की कला की सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है। इसी विशेषता से प्रभावित होकर यह चयन

पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हर्ष का अनुभव हो रहा है। गाथाओं के हिन्दी अनुवाद को मूलानुगामी बनाने का प्रयास किया गया है। यह दृष्टि रही है कि अनुवाद पढ़ने से ही शब्दों की विभक्तियां एवं उनके अर्थ समझ में आ जाएँ। अनुवाद को प्रवाहमय बनाने की भी इच्छा रही है। कहाँ तक सफलता मिली है इसको तो पाठक ही बता सकेंगे। अनुवाद के अतिरिक्त गाथाओं का व्याकरणिक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया है। इस विश्लेषण में जिन संकेतों का प्रयोग किया गया है, उनको संकेत सूची में देखकर समझा जा सकता है। यह आशा की जाती है कि चयनिका के अध्ययन से प्राकृत को व्यवस्थित रूप से सीखने में सहायता मिलेगी तथा व्याकरण के विभिन्न नियम सहज में ही सीखे जा सकेंगे। यह सर्वविदित है कि किसी भी भाषा को सीखने के लिए व्याकरण का ज्ञान अत्यावश्यक है। प्रस्तुत गाथाएँ एवं उनके व्याकरणिक विश्लेषण से व्याकरण के साथ-साथ शब्दों के प्रयोग भी सीखने में मदद मिलेगी। शब्दों का व्याकरण और उनका अर्थपूर्ण प्रयोग दोनों ही भाषा सीखने के आधार होते हैं। अनुवाद एवं व्याकरणिक विश्लेषण जैसा भी बन पाया है पाठकों के समक्ष है। पाठकों के सुझाव मेरे लिए बहुत ही काम के होंगे।

आभार :—

उत्तराध्ययन–चयनिका के लिए श्री पुण्यविजयजी एव श्री अमृतलाल मोहनलाल भोजक द्वारा संपादित उत्तराध्ययन के संस्करण का उपयोग किया गया है। इसके लिए श्री पुण्यविजयजी एवं श्री अमृतलाल जी भोजक के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। उत्तराध्ययन का यह संस्करण श्री महावीर विद्यालय से सन् 1977 में प्रकाशित हुआ है।

ज्ञान के आराधक श्री रणजीतसिंह जी कूमट ने इस पुस्तक का प्राक्कथन लिखने की स्वीकृति प्रदान की, इसके लिए मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ ।]

मेरे विद्यार्थी डॉ श्यामराव व्यास, सहायक प्रोफेसर, दर्शन-विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर का आभारी हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक के अनुवाद को पढ़कर उपयोगी सुझाव दिये । डॉ. हुकम चन्द जैन (जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर), डॉ. सुभाष कोठारी तथा श्री सुरेश सिसोदिया (आगम, अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर) ने प्रूफ संशोधन में जो सहयोग दिया है उसके लिए आभारी हूँ ।

मेरी धर्म पत्नी श्रीमती कमला देवी सोगाणी ने इस पुस्तक की गाथाओं का मूल ग्रन्थ से सहर्ष मिलान किया है तथा प्रूफ-संशोधन का कार्य रुचि पूर्वक किया है, अतः मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ ।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए प्राकृत भारती अकादमी जयपुर के सचिव श्री देवेन्द्रराज जी मेहता तथा संयुक्त सचिव एवं निदेशक महोपाध्याय श्री विनयसागर जी ने जो व्यवस्था की है, उसके लिए उनका हृदय से आभार प्रकट करता हूं ।

एच-7, चितरंजन मार्ग
"सी" स्कीम, जयपुर-302001

कमलचन्द सोगाणी

उत्तराध्ययन-चयनिका

उत्तराध्ययन – चयनिका

1 आणानिद्देसकरे गुरूणमुववायकारए ।
इंगियाकारसंपन्ने से विणीए त्ति वुच्चई ॥

2 मा गलिअस्से व कसं वयणमिच्छे पुणो पुणो ।
कसं व दट्ठुमाइन्ने पावगं परिवज्जए ॥

3 नापुट्ठो वागरे किंचि पुट्ठो वा नालियं वए ।
कोहं असच्चं कुव्वेज्जा धारेज्जा पियमप्पियं ॥

4 अप्पा चेव दमेयव्वो अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पा दंतो सुही होइ अस्सिं लोए परत्थ य ॥

उत्तराध्ययन – चयनिका

1. (जो) गुरु की सेवा करनेवाला (है), (जो) (उसकी) आज्ञा (और) (उसके) उपदेश का पालन करनेवाला (है), (जो) शरीर के विभिन्न अंगों की चेष्टा से (तथा) चेहरे के रंग-ढंग से (उसके) आंतरिक विचार (की समझ) से युक्त (है), वह विनीत (विनम्र) कहा जाता है।

2. (शिष्य) (गुरु के) आदेश को बार-बार न चाहे, जैसे कि दुर्दम घोड़ा चाबुक को (बार-बार चाहता है)। (शिष्य) (गुरु के आदेश से) पापमय (कर्म) को छोड़े जैसे कि कुलीन घोडा चाबुक को देखकर (उपद्रवकारी प्रवृत्ति को छोड़ देता है)।

3. (यदि) (गुरु के द्वारा) पूछा नहीं गया (है), (तो) कुछ न बोले और (यदि) (गुरु के द्वारा) पूछा गया है, (तो) झूठ न बोले। क्रोध को मिथ्या (अस्तित्वहीन) करे। (तथा) (गुरु के) प्रिय (और) अप्रिय वचन को धारण करे।

4. आत्मा ही सचमुच कठिनाई से वश में किया जानेवाला (होता है), (तो भी) आत्मा ही वश में किया जाना चाहिए। (कारण कि) वश में किया हुआ आत्मा (ही) इस लोक और पर-लोक में सुखी होता है।

5 वरं मे अप्पा दंतो संजमेण तवेण य ।
मा हं परेहि दम्मंतो बंधणेहि वहेहि य ॥

6 पडणीयं च बुद्धाणं वाया अदुव कम्मुणा ।
आवी वा जइ वा रहस्से नेव कुज्जा कयाइ वि ॥

7 न लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं न निरत्थं न मम्मयं ।
अप्पणट्ठा परट्ठा वा उभयस्संतरेण वा ॥

8 हियं विगयभया बुद्धा फरुसं पि अणुसासणं ।
वेस्सं तं होइ मूढाणं खंति-सोहिकरं पयं ॥

9 रमए पंडिए सासं हयं भद्दं व वाहए ।
बालं सम्मति सासंतो गलिअस्सं व वाहए ॥

5. संयम और तप से मेरे द्वारा वश में किया हुआ (मेरा) आत्मा अधिक अच्छा (है); किन्तु) बंधन और प्रहार से दूसरों के द्वारा वश में किया जाता हुआ मैं (अधिक अच्छा) नहीं (हूँ)।

6. वचन से अथवा कर्म से, खुले रूप में या भले ही गुप्त (स्थान) में (कोई भी मनुष्य) जागरूक (व्यक्तियों) का विरोध किसी समय भी कभी न करे।

7. (यदि) (किसी के द्वारा कुछ) पूछा गया (हो) (तो भी) स्वकीय (निज के) प्रयोजन से या दूसरों के प्रयोजन से या दोनों के प्रयोजन से (व्यक्ति) पाप-युक्त न बोले, अनावश्यक न (बोले) (तथा) रहस्य-वाचक (भी) न (बोले)।

8. निर्भय (और) जागरूक (शिष्य) (गुरु के) कठोर भी अनुशासन को हितकारी (मानते हैं)। मूच्छितों के लिए सहनशीलता (प्रदर्शित) करनेवाला (तथा) (उनको) शुद्धि करनेवाला वह अवसर अप्रीतिकर होता है।

9. बुद्धिमान (व्यक्ति) (विनीत को निर्देश देते हुए) खुश होता है, जैसे कि घुड़सवार उत्तम घोड़े को वशीभूत करते हुए (खुश होता है)। (किन्तु) (बुद्धिमान व्यक्ति) अविनीत को निर्देश देते हुए दुःखी होता है, जैसे कि घुड़-सवार दुर्दम घोड़े को (वशीभूत करते हुए) (दुःखी होता है)।

10 खड्डुगा मे चवेडा मे अक्कोसा य वहा य मे ।
कल्लाणमणुसासंतं 'पावदिट्ठि' त्ति मन्नइ ॥

11 चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणिह जंतुणो ।
माणुसत्तं सुई सद्धा संजमम्मि य वीरियं ॥

12 कम्मसंगेहिं सम्मूढा दुक्खिया बहुवेयणा ।
अमाणुसासु जोणीसु विणिहम्मंति पाणिणो ॥

13 कम्माणं तु पहाणाए आणुपुव्वी कयाइ उ ।
जीवो सोहिमणुप्पत्ता आययंति मणुस्सयं ॥

14 माणुस्सं विग्गहं लद्धुं सुई धम्मस्स दुल्लहा ।
जं सोच्चा पडिवज्जंति तवं खंतिमहिंसयं ॥

15 आहच्च सवणं लद्धुं सद्धा परमदुल्लहा ।
सोच्चा णेयाउयं मग्गं बहवे परिभस्सई ॥

10. खोटी निगाहवाला (व्यक्ति) (गुरु के) मंगलप्रद (तथा) शिक्षण प्रदान करनेवाले (आदेश) को इस प्रकार मानता है (कि) (वह) मेरे लिए ठोकर (है), (वह) मेरे लिए थप्पड़ (है) तथा (वह) मेरे लिए कटु वचन और प्रहार (है)।

11. इस संसार में व्यक्ति के लिए चार उत्कृष्ट अंग (साधना) दुर्लभ (हैं) : मनुष्यत्व, (अध्यात्म का)श्रवण, श्रद्धा तथा संयम में सामर्थ्य।

12. (जो) जीव कर्म-संग से मोहित (और) दु:खी (होते हैं), (जिनकी) पीडाएँ अत्यधिक (होती हैं), (वे) अमनुष्य संबंधी (मनुष्येतर) योनियों में हटा (चला) दिए जाते हैं।

13. किन्तु कर्मों के विनाश के लिए किसी समय भी (जब) सिलसिला (शुरु होता है), (तो) शुद्धि को प्राप्त जीव मनुष्यत्व ग्रहण करते हैं।

14. मनुष्य-संबंधी शरीर को प्राप्त करके (उस) धर्म (अध्यात्म) का श्रवण दुर्लभ (होता है) जिसको सुनकर (मनुष्य) तप, क्षमा (और) अहिंसत्व को स्वीकार करते हैं।

15. कभी (अध्यात्म के) श्रवण को प्राप्त करके (भी) (उसमें) श्रद्धा अत्यधिक दुर्लभ (होती है)। (अध्यात्म की ओर) ले जानेवाले मार्ग को सुनकर (भी) बहुत (मनुष्य-समूह) विचलित हो जाता है।

16 सुइं च लद्धुं सद्धं च वीरियं पुण दुल्लहं ।
बहवे रोयमाणा वि नो य णं पडिवज्जई ॥

17 माणुसत्तम्मि आयाओ जो धम्मं सोच्च सद्दहे ।
तवस्सी वीरियं लद्धु संवुडे निद्धुणे रयं ॥

18 सोही उज्जुयभूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई ।
निव्वाणं परमं जाइ घयसित्ते व पावए ॥

19 असंखयं जीविय मा पमायए
जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं ।
एवं वियाणाहि जणे पमत्ते
किन्नु विहिंसा अजया गहिंति ॥

20 जे पावकम्मेहि धणं मणुस्सा
समाययंती अमइं गहाय ।
पहाय ते पास पयट्टिए नरे
वेराणुबद्धा नरगं उवेंति ॥

16. (अध्यात्म के) श्रवण और (उसमें) श्रद्धा को प्राप्त करके भी फिर (संयम में) सामर्थ्य दुर्लभ (है)। तथा यद्यपि (संयम को) चाहते हुए (बहुत मनुष्य) (होते हैं) (तथापि) (सामर्थ्य के अभाव में) (वह) मनुष्य-समूह उस (संयम) को स्वीकार नहीं कर पाता है।

17. (जिसने) मनुष्यत्व को प्राप्त किया (है) (तथा) जो धर्म (अध्यात्म) को सुनकर (उसमें) श्रद्धा करता है, (वह) सावद्य (पाप-युक्त) प्रवृत्ति से रहित तपस्वी (संयम में) सामर्थ्य प्राप्त करके (कर्म)-रज को नष्ट कर देता है।

18. सीधे मनुष्य की शुद्धि (होती है)। शुद्ध (व्यक्ति) में धर्म (आध्यात्म) ठहरता है। (और) (वह) घी से भिगोई गई अग्नि की तरह परम दिव्यता प्राप्त करता है।

19. (मिला हुआ यह) जीवन अपरिमार्जित (पाशविक वृत्तियों सहित) (है)। (अतः जीवन के परिमार्जन के लिए) प्रमाद मत करो, क्योंकि बुढ़ापे के समीप में लाए हुए (व्यक्ति) का (कोई) सहारा नहीं (है)। प्रमादी जन, हिंसक (और) नियम-रहित (व्यक्ति) किसका (सहारा) लेंगे? इस प्रकार तुम समझो।

20. जो मनुष्य कुबुद्धि को ग्रहण करके पाप-कर्मों द्वारा धन को स्वीकार करते हैं, (तुम) (इस प्रकार) प्रवर्तित मनुष्यों को देखो, वे (धन को) छोड़कर वैर से बंधे हुए नरक को प्राप्त करते हैं।

21 तेणे जहा संधिमुहे गहीए
सकम्मुणा कच्चइ पावकारी ।
एवं पया ! पेच्च इहं च लोए
कडाण कम्माण न मोक्खु अत्थि ।।

22 संसारमावन्न परस्स अट्ठा
साहारणं जं च करेइ कम्मं ।
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले
न बंधवा बंधवयं उवेंति ।।

23 वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते
इमम्मि लोए अदुवा परत्था ।
दीवप्पणट्ठे व अणंतमोहे
नेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव ।।

24 सुत्तेसु यावी पडिबुद्धजीवी
न वीससे पंडिय आसुपन्ने ।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं
भारंडपक्खी व चरऽप्पमत्तो ।।

21. जैसे सेंध[1]-द्वार पर पकड़ा गया दुराचारी चोर स्वकर्म से (ही) छेदा जाता है, इसी प्रकार हे मनुष्य ! (तू) इस लोक में और परलोक में (अपने दुष्कर्म से ही छेदा जायेगा), चूंकि लोक में किए हुए दुष्कर्मों के फल से छुटकारा नहीं होता है।

22. संसार को प्राप्त (व्यक्ति) दूसरे (रिश्तेदारों) के प्रयोजन से जिस भी लौकिक कर्म को करता है, उस कर्म के (फल) -भोग का में वे ही रिश्तेदार रिश्तेदारी स्वीकार नहीं करते हैं।

23. प्रमादी (मूर्च्छा-युक्त मनुष्य) धन से इस लोक में अथवा परलोक में शरण प्राप्त नहीं करता है। (वह) अनन्त मूर्च्छा के कारण (शान्ति की ओर) ले जाने वाले (मार्ग) को देखकर (भी) नहीं देखकर ही (चलता है), जैसे बुझे हुए दीपक के होने पर (कोई अंधकार में चलता हो)।

24. कुशल-बुद्धि विद्वान तथा जागा हुआ (आध्यात्मिक) (जीवन) जीनेवाला (व्यक्ति) सोए हुओं (अध्यात्म को भूले हुए व्यक्तियों) पर भरोसा न करे, समय के क्षण निर्दयी (होते हैं), शरीर निर्बल (है), (अतः) (तू अप्रमादी (जागृत) भारण्ड पक्षी की तरह विचरण कर।

---

1. वह छेद जो चोर दीवार तोड़कर बनाते है।

25 स पुव्वमेवं न लभेज्ज पच्छा
एसोवमा सासयवाइयाणं ।
विसीयई सिढिले आउयम्मि
कालोवणीए सरीरस्स भेए ॥

26 जहा सागडिओ जाणं समं हेच्चा महापहं ।
विसमं मग्गमोइण्णो अक्खे भग्गम्मि सोयई ॥

27 एवं धम्मं विउक्कम्म अहम्मं पडिवज्जिया ।
बाले मच्चुमुहं पत्ते अक्खे भग्गे व सोयई ॥

28 तओ से मरणंतम्मि बाले संतसई भया ।
अकाममरणं मरइ धुत्ते वा कलिणा जिए ॥

29 जावंतऽविज्जापुरिसा सव्वे ते दुक्खसंभवा ।
लुप्पंति बहुसो मूढा संसारम्मि अणंतए ॥

25. (जो) प्रारभ में हा (अप्रमत्त) नहीं (होता है), वह बाद में (अप्रमत्त अवस्था को) प्राप्त कर लेगा, यह विचार शाश्वतवादियों (अमरतावादियों) का (है)। (ऐसा व्यक्ति) आयु के शिथिल होने पर, मृत्यु के समीप में लाया हुआ होने पर (तथा) शरीर के वियोजन के (अवसर) पर खेद करता है।

26. जैसे (कोई) गाड़ीवान जानता हुआ (भी) उपयुक्त मुख्य सड़क को छोड़कर ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर (यदि) उतरा (हुआ) (है), (तो) (वह) धुरी के खण्डित होने पर शोक करता है;

27. इसी तरह धर्म को छोड़कर, अधर्म को अंगीकार करके, मृत्यु के मुख में गया हुआ मूढ़ (मनुष्य) शोक करता है, जैसे धुरी के खण्डित होने पर (गाडीवान शोक करता है)

28. जैसे कि एक पासे में (ही) मात दिया हुआ जुआरी भय से अत्यन्त कांपता है, (वैसे ही) वह मूढ़ (मनुष्य) बाद में मरण की निकटता में (भय से अत्यन्त कांपता है) और (वह) अकाम (मूर्छित) मरण (की अवस्था) में (ही) मरता है।

29. जितने (भी) अज्ञानी मनुष्य (हैं), वे सभी दुःखों के स्रोत (हैं)। (और) (वे) मूढ़ बार-बार अनन्त संसार में दुःखी किए जाते हैं।

30 अज्झत्थं सव्वम्रो सव्व दिस्स पाणे पियायए ।
न हणे पाणिणो पाणे भय:वेराम्रो उवरए ॥

31 जे केइ सरीरे सत्ता वन्ने य सव्वसो ।
मणसा काय-वक्केणं सव्वे ते दुक्खसंभवा ॥

32 भोगामिसदोसविसण्णे हियनिस्सेसबुद्धिवोच्चत्थे ।
बाले य मंदिए मूढे बज्झई मच्छिया व खेलम्मि ॥

33 पाणे य नाइवाएज्जा से समिए त्ति वुच्चई ताई ।
तम्रो से पावगं कम्मं निज्जाइ उदगं व थलाम्रो ॥

34 कसिणं पि जो इमं लोयं पडिपुन्नं दलेज्ज एक्कस्स ।
तेणावि से ण सतुस्से इइ दुप्पूरए इमे आया ॥

30. पूर्णतः प्रत्येक जीव को जानकर (व्यक्ति उसके) प्राणों को (अपने समान) प्रिय रूप में ग्रहण करे। (वह) भय (और) वैर से विरत (हो) (तथा) जीवों के प्राणों का घात न करे।

31. जो कोई मन से, वचन से (तथा) काय से शरीर में, कीर्ति में और रूप में पूर्णतः आसक्त (होते हैं), वे समस्त दुःखों के स्रोत (हैं)।

32. अज्ञानी, मन्द और मूढ़ (व्यक्ति) (जो) भोग की लालसा के दोष में डूबा हुआ (है), (जिसकी) (स्व-पर) कल्याण तथा अभ्युदय में विपरीत बुद्धि (है), (वह) अशुभ कर्मों के द्वारा) बांधा जाता है, जैसे कफ के द्वारा मक्खी (बांधी जाती है)।

33. (जो) प्राणियों को बिल्कुल नहीं मारता है, वह (प्राणियों) (का) रक्षक (होता है)। इस प्रकार (वह) सम्यक् प्रवृत्ति-वाला कहा जाता है। उस कारण (सम्यक् प्रवृत्ति के कारण) उसके अशुभ-कर्म बिदा हो जाते हैं, जैसे कि सूखी जमीन से पानी (बिदा हो जाता है)।

34. जो (कोई) इस सकल लोक को किसी के लिए पूर्णरूप से दे भी दे, (तो) वह उसके द्वारा भी तृप्त नहीं होगा। इस प्रकार यह मनुष्य कठिनाई से तृप्त होनेवाला (होता है)।

35 जहा लाभो तहा लोभो लाभा लोभो पवड्ढई ।
दोमासकयं कज्जं कोडीए वि न निट्ठियं ॥

36 जो सहस्सं सहस्साणं संगामे दुज्जए जिणे ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं एस से परमो जओ ॥

37 अप्पाणमेव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण बज्झओ ।
अप्पाणमेव अप्पाणं जइत्ता सुहमेहए ॥

38 सुवण्ण-रुप्पस्स उ पव्वया भवे
सिया हु केलाससमा असंखया ।
नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किंचि
इच्छा हु आगाससमा अणंतिया ॥

39 दुमपत्तए पंडुयए जहा
निवडइ राइगणाण अच्चए ।
एवं मणुयाण जीविय
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

35. जैसे लाभ (होता जाता है), वैसे ही लोभ (होता जाता है)। लाभ के कारण लोभ बढ़ता है। दो माशा (सोने) से किया गया कार्य करोड़ (माशा सोने) से भी निष्पन्न नहीं (होता है)।

36. जो (व्यक्ति) कठिनाई से जीते जानेवाले संग्राम में हजारों के द्वारा हजारों को जीते (और) (जो) एक स्व को जीते (इन दोनों में) उसकी यह (स्व पर जीत) परम विजय(है)।

37. (तू) अपने में (अंतरंग राग-द्वेष से) ही युद्ध कर, (जगत में) बहिरंग (व्यक्तियों) से युद्ध करने से तेरे लिए क्या लाभ? (सच यह है कि) अपने में ही अपने (राग-द्वेष) को जीत कर सुख बढ़ता है।

38. लोभी मनुष्य के लिए कदाचित् कैलाश (पर्वत) के समान सोने-चांदी के असंख्य पर्वत भी हो जाएँ, किन्तु उनके द्वारा (उसकी) कुछ (भी) (तृप्ति) नहीं (होती है), क्योंकि इच्छा आकाश के समान अन्तरहित (होती है)।

39. जैसे पेड़ का पीला पत्ता रात्रि की संख्याओं अर्थात् रात्रियों के बीत जाने पर नीचे गिर जाता है, इसी प्रकार मनुष्यों का जीवन (भी समाप्त हो जाता है)। (अतः) हे गौतम! अवसर को (समझ) (और) (तू) प्रमाद मत कर।

40 कुसग्गे जह ओसबिंदुए
थोवं चिट्ठइ लंबमाणए ।
एवं मणुयाण जीवियं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

41 दुल्लभे खलु माणुसे भवे
चिरकालेण वि सव्वपाणिणं ।
गाढा य विवाग कम्मुणो
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

42 परिजूरइ ते सरीरयं केसा पंडुरया भवंति ते ।
से सव्वबले य हायई समयं गोयम ! मा पमायए ॥

43 वोच्छिन्द सिणेहमप्पणो कुमुयं सारइयं व पाणियं ।
से सव्वसिणेहवज्जिए समयं गोयम ! मा पमायए ॥

44 बुद्धे परिनिव्वुए चरे गाम गए नगरे व संजए ।
संतिमग्गं च वूहए समयं गोयम ! मा पमायए ॥

40. जैसे कुशघास के पत्ते के तेज किनारे पर लटकता हुआ ओस-बिन्दु थोड़ी (देर तक) ठहरता है, इसी प्रकार मनुष्य का जीवन (थोड़ी देर तक रहता है)। (अतः) हे गौतम! अवसर को (समझ) और (तू) प्रमाद मत कर।

41. वास्तव में सब प्राणियों के लिए मनुष्य-संबंधी जन्म बहुत समय पश्चात् भी दुर्लभ (है), और कर्म के परिणाम बलवान् (होते हैं)। (अतः) हे गौतम! अवसर को (समझ) (और) तू प्रमाद मत कर।

42. तेरा शरीर क्षीण हो रहा है। तेरे बाल सफेद हो रहे हैं। और (तेरा) प्रत्येक बल क्षीण किया जाता है (अतः) हे गौतम! अवसर को (समझ) (और) (तू) प्रमाद मत कर।

43. स्वयं की आसक्ति को (तू) छोड़, जैसे कि शरत्कालीन लाल कमल पानी को (छोड़ देता है), (और) (इस तरह से) वह (लाल कमल) समस्त आर्द्रता (गीलेपन) से रहित (होता है)। (अतः) हे गौतम! अवसर को (समझ), (और) (तू) प्रमाद मत कर।

44. (तू चाहे) ग्राम अथवा नगर में स्थित (हो), (किन्तु तू वहाँ) संयत (अवस्था में), जागृत (दशा में) (तथा) शान्त (स्थिति में) रह। इसके अतिरिक्त (तू) शांति-पथ को पुष्ट कर। (अतः) हे गौतम! अवसर को (समझ), (और) प्रमाद मत कर।

45 जे यावि होइ निव्विज्जे थद्धे लुद्धे अनिग्गहे ।
अभिक्खणं उल्लवई अविणीए अबहुस्सुए ॥

46 अह पंचहिं ठाणेहिं
जेहिं सिक्खा न लब्भई ।
थंभा १ कोहा २ पमाएणं ३
रोगेणाऽऽलस्सएण य ४-५ ॥

47 अह अट्ठहिं ठाणेहिं सिक्खासीले त्ति वुच्चई ।
अहस्सिरे १ सया दंते २ न य मम्ममुयाहरे ॥

48 नासीले ४ न विसीले ५ न सिया अइलोलुए ६ ।
अकोहणे ७ सच्चरए ८ सिक्खासीले त्ति वुच्चइ ॥

49 जहा से तिमिरविद्धंसे उत्तिट्ठंते दिवाकरे ।
जलंते इव तेएणं एवं भवइ बहुस्सुए ॥

50 जहा से सामाइयाणं कोट्ठागारे सुरक्खिए ।
नाणाधन्नपडिपुन्ने एवं भवइ बहुस्सुए ॥

45. जो (व्यक्ति) मूर्ख, अभिमानी, इन्द्रिय-संयम-रहित तथा लोभी होता है, (जो) बारंबार अप शब्द बोलता है, (जो) अविनीत (है), (वह) अ-विद्वान (होता है)।

46. अच्छा तो, जिन (इन) पांच कारणों से शिक्षा प्राप्त नहीं की जाती है : अहंकार से, क्रोध से, प्रमाद से, रोग से तथा आलस्य से।

47. और इस प्रकार आठ कारणों (बातों) से (व्यक्ति) ज्ञान का अभ्यासी कहा जाता है : 1) (जो) हँसी करनेवाला नहीं है 2) (जो) इन्द्रियों को वंश में करनेवाला (है) 3) (जो) (किसी की) दुर्बलता को नहीं कहता है।

48. (जो) चरित्र-हीन नहीं (है), (जो) व्यभिचारी नहीं (है), (जो) अति रस-लोलुप नहीं (है), (जो) अक्रोधी (है), (तथा) (जो) सत्य में संलग्न (है)-इस विवरणवाला (वह व्यक्ति) ज्ञान का अभ्यासी कहा जाता है।

49. जैसे अंधकार को समाप्त करनेवाला उदित होता हुआ सूर्य मानो तेजस्विता से चमकता हुआ (दिखाई देता है), इसी प्रकार विद्वान (ज्ञान की तेजस्विता से चमकता हुआ) होता है।

50. जैसे सामाजिकों (समूह से संबध रखनेवालों का) का भण्डार सुरक्षित (और) तरह-तरह के अनाजों से भरा हुआ (होता है), इसी प्रकार विद्वान (तरह-तरह के ज्ञान से भरा हुआ) होता है।

51 जहा से सयंभुरमणे उदही अक्खओदए ।
नाणारयणपडिपुण्णे एवं भवइ बहुस्सुए ॥

52 इह जीविए राय ! असासयम्मि
धणियं तु पुन्नाइं अकुव्वमाणो ।
से सोयई मच्चुमुहोवणीए
धम्मं अकाऊण परम्मि लोए ॥

53 जहेह सीहो व मियं गहाय
मच्चू नरं नेइ हु अंतकाले ।
न तस्स माया व पिया व भाया
कालम्मि तम्मंसहारा भवंति ॥

54 न तस्स दुक्खं विभयंति नायओ
न मित्तवग्गा न सुया न बंधवा ।
एगो सयं पच्चणुहोइ दुक्खं
कत्तारमेवा अणुजाइ कम्मं ॥

55 चेच्चा दुपयं च चउप्पयं च
खेत्तं गिहं धण धन्नं च सव्वं ।
सकम्मबिइओ अवसो पयाइ
परं भवं सुंदर पावगं वा ॥

51. जैसे स्वयं भूरमण (नामक) समुद्र तरह-तरह के रत्नों से भरा हुआ (होता है), (और) (उसका) जल (भी) अक्षय (होता है), इसी प्रकार विद्वान (तरह तरह के ज्ञान-रत्नों से भरा हुआ) होता है (तथा) (उसका ज्ञान भी अक्षय होता है)।

52. हे राजा ! (जो) इस अनित्य जीवन में अतिशयरूप से शुभ कार्यों को न करता हुआ (जीता है), वह मृत्यु के मुख में ले जाए जाने पर (इसी जीवन में) शोक करता है (और) (यहाँ किसी भी) शुभ कार्य को न करके परलोक में (भी) (शोक करता है)।

53. जैसे यहां सिंह हिरण को पकड़ कर ले जाता है, (वैसे ही) मृत्यु अन्तिम समय में मनुष्य को निस्संदेह ले जाती है। उसके माता और पिता और भाई उस मृत्यु के समय में भागीदार नहीं होते हैं।

54. उसके (व्यक्ति के) दु:ख को सगोत्री (जन) नहीं बाँटते हैं, न मित्र-वर्ग, सुत (और) न बंधु (बाँटते हैं)। (वह) स्वयं अकेला (ही) दु:ख का अनुभव करता है। (ठीक ही है) कर्म कर्ता का ही अनुसरण करता है।

55. व्यक्ति द्विपद और चतुष्पद को, खेत, घर, धन-धान्य और सभी को छोड़कर कर्मों सहित अकेला शक्ति-हीन (बना हुआ) अनिष्टकर अथवा इष्टकर दूसरे जन्म को प्रस्थान करता है।

56 अच्चेइ कालो तूरंति राइओ
न यावि भोगा पुरिसाण निच्चा ।
उवेच्च भोगा पुरिसं चयंति
दुमं जहा खीणफलं व पक्खी ॥

57 खणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा
पकामदुक्खा अनिकामसोक्खा ।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया
खाणी अणत्थाण उ॰ कामभोगा ॥

58 परिव्वयंते अनियत्तकामे
अहो य राओ परितप्पमाणे ।
अण्णप्पमत्ते धणमेसमाणे
पप्पोति मच्चुं पुरिसे जरं च ॥

59 इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि
इमं च मे किच्च इमं अकिच्चं ।
तं एवमेवं लालप्पमाणं
हरा हरंति त्ति कहं पमाओ ? ॥

60 जा जा वच्चइ रयणी न सा पडिनियत्तई ।
अधम्मं कुणमाणस्स अफला जंति राइओ ॥

56. समय व्यतीत होता है, रात्रियाँ वेग से जाती हैं, और मनुष्यों के भोग भी नित्य नहीं हैं। भोग मनुष्यों को प्राप्त करके (उनको) त्याग देते हैं, जैसे पक्षी फल-रहित वृक्ष को (त्याग देते हैं)।

57. इन्द्रिय-भोग निश्चय ही अनर्थों की खान (होते हैं), क्षण भर के लिए सुखमय (तथा) बहुत समय के लिए दुःखमय (होते हैं), अति दुःखमय (तथा) अल्प सुखमय (होते हैं) (वे) संसार-(सुख) और मोक्ष-(सुख) (दोनों) के विरोधी बने हुए (हैं)।

58. (जिसकी) इच्छा विदा नहीं हुई (है), (ऐसा) (मनुष्य) (जन्म-जन्मों में) परिभ्रमण करता हुआ (तथा) दिन में और रात में दुःखी होता हुआ (रहता है)। (खेद है कि) दूसरों के लिए मूर्च्छा-युक्त (मनुष्य) धन की खोज करता हुआ (ही) बुढ़ापे और मृत्यु को प्राप्त करता है।

59. यह (वस्तु) मेरी है और यह (वस्तु) मेरी नहीं (है), यह मेरे द्वारा करने योग्य (है) और यह (मेरे द्वारा) करने योग्य नहीं (है), इस प्रकार ही बारंबार बोलते हुए उस (व्यक्ति) को काल ले जाता है, अतः कैसे प्रमाद (किया जाए)?

60. जो-जो रात बीतती है, वह वापिस नहीं आती है। अधर्म करते हुए (व्यक्ति) की रात्रियाँ व्यर्थ होती हैं।

61 जा जा वच्चइ रयणी न सा पडिनियत्तई ।
धम्मं च कुणमाणस्स सफला जंति राइओ ॥

62 जस्सऽत्थि मच्चुणा सक्खं जस्स चऽत्थि पलायणं ।
जो जाणइ न मरिस्सामि सो हु कंखे सुए सिया ॥

63 सव्वं जगं जइ तुहं सव्वं वा वि धणं भवे ।
सव्वं पि ते अपज्जत्तं नेव ताणाए तं तव ॥

64 मरिहिसि रायं ! जया तया वा
मणोरमे कामगुणे पहाय ।
एक्को हु धम्मो नरदेव ! ताणं
न विज्जए अन्नमिहेह किंचि ॥

65 दवग्गिणा जहाऽरन्ने डज्झमाणेसु जंतुसु ।
अन्ने सत्ता पमोयंति राग-दोसवसं गया ॥

66 एवमेव वयं मूढा कामभोगेसु मुच्छिया ।
डज्झमाणं न बुज्झामो राग-दोसग्गिणा जयं ॥

61. जो जो रात बीतती है, वह वापिस नहीं आती है। धर्म करते हुए (व्यक्ति) की ही रात्रियाँ सफल होती हैं।

62. जिसकी मृत्यु के साथ मित्रता है, जिसके लिए (मृत्यु से) भागना सभव (है), जो जानता है 'मैं नहीं मरूँगा' वह ही आशा करता है (कि) आनेवाला कल है।

63. यदि सारा जगत तुम्हारा हो जाए अथवा सारा धन भी (तुम्हारा) (हो जाए), तो भी (वह) सब तुम्हारे लिए अपर्याप्त (है)। (याद रखो) वह तुम्हारे सहारे के लिए कभी (उपयुक्त) नहीं (है)।

64. हे राजा! (तू) सुन्दर विषयों को छोड़कर किसी भी समय निस्सदेह मरेगा। हे नरदेव! (तू समझ कि) एक धर्म ही शरण (है)। यहाँ इस लोक मे कुछ दूसरी (वस्तु) (शरण) नही होती है।

65. जैसे जंगल में दवाग्नि द्वारा जन्तुओं के जलाए जाते हुए होने पर दूसरे (वे) जीव (जो) राग-द्वेष की अधीनता को प्राप्त (हैं) प्रसन्न होते हैं (और यह समझ नहीं पाते कि दवाग्नि उनको भी जला देगी)।

66. बिल्कुल ऐसे ही हम मूर्ख (मनुष्य) विषय भोगों में मूर्च्छित होकर राग-द्वेषरूपी अग्नि के द्वारा जलाए जाते हुए जगत् को नहीं समझ पाते हैं।

67 भोगे भोच्चा वमित्ता य लहुभूयविहारिणो ।
आमोयमाणा गच्छंति दिया कामकमा इव ॥

68 लाभालाभे सुहे दुक्खे जीविए मरणे तहा ।
समो निंदा-पसंसासु तहा माणावमाणओ ॥

69 जरा – मरणवेगेणं वुज्झमाणाण पाणिणं ।
धम्मो दीवो पइट्ठा य गई सरणमुत्तमं ॥

70 सरीरमाहु नाव त्ति जीवो वुच्चइ नाविओ ।
संसारो अण्णवो वुत्तो जं तरंति महेसिणो ॥

71 उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी नोवलिप्पई ।
भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चई ॥

72 उल्लो सुक्को य दो छूढा गोलया मट्टियामया ।
दो वि आवडिया कुड्डे जो उल्लो सोऽत्थ लग्गई ॥

73 एवं लग्गंति दुम्मेहा जे नरा कामलालसा ।
विरत्ता उ न लग्गंति जहा से सुक्कगोलए ॥

67. (जो व्यक्ति) भोगों को भोग कर और (उन्हें) छोड़-कर हलके हुए विहार करनेवाले (है), (वे) प्रसन्न होते हुए गमन करते हैं, जैसे कि पक्षी इच्छा-क्रम (स्वतन्त्रता) के कारण (गमन करते हैं)।

68. (अनासक्त व्यक्ति) लाभ-हानि, सुख-दुःख तथा जीवन मरण में, निन्दा-प्रशंसा तथा मान-अपमान में तटस्थ (होता है)।

69. जरा-मरण के प्रवाह के द्वारा बहा कर लिए जाते हुए प्राणियों के लिए धर्म (अध्यात्म) टापू (आश्रय गृह) (है) सहारा (है) रक्षा-स्थल (है) तथा उत्तम शरण (है)।

70. चूंकि शरीर को नाव कहा, (इसलिए) जीव नाविक कहा जाता है। संसार समुद्र कहा गया (है), जिसको श्रेष्ठ की खोज करने वाले (मनुष्य) पार कर जाते हैं।

71 भोगों के कारण कर्म-बन्ध होता है। अविलासी (कर्मों के द्वारा) मलिन नहीं किया जाता है। विलासी (कर्मों के कारण) संसार में भटकता है। अविलासी (मलिनता से) छुटकारा पा जाता है।

72. गीला और सूखा, दो मिट्टीमय गोले फेंके गए। दोनों ही दीवार पर पड़े, (किन्तु) जो गीला (था), वह यहाँ पर (दिवार पर) चिपका।

73. इसी प्रकार जो मनुष्य दुर्बुद्धि (हैं), (और विषयों से अत्यन्त लालायित (होते हैं), (वे) (विषयों से) चिपट जाते हैं, किन्तु जो विरक्त (हैं), (वे) (विषयों से) नहीं चिपकते हैं, जैसे वह सूखा गोला (दिवार से नहीं चिपकता है)।

74 खलुंका जारिसा जोज्जा दुस्सीसा वि हु तारिसा ।
जोइया धम्मजाणम्मि भज्जंति धिइदुब्बला ॥

75 सामाइएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सामाइएणं सावज्ज-
जोगविरइं जणयइ ।

76 पायच्छित्तकरणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? पायच्छि-
त्तकरणेणं पावकम्मविसोहिं जणयइ, निरइयारे यावि भवइ ।
सम्मं च णं पायच्छित्तं पडिवज्जमाणे मग्गं च मग्गफलं च
विसोहेइ, आयारं च आयारफलं च आराहेइ ।

77 खमावणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? खमावणयाए
णं पल्हायणभावं जणयइ । पल्हायणभावमुवगए य सव्वपाण
–भूय–जीव-सत्तेसु मेत्तीभावं उप्पाएइ । मेत्तीभावामुवगए
यावि जीवे भावविसोहिं काऊण निब्भए भवइ ।

78 धम्मकहाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? धम्मकहाए णं
पवयणं पभावेइ, पवयणपभावए णं जीवे आगमेसस्सभद्दत्ताए
कम्मं निबंधइ ।

74. जैसे जोते जाने योग्य उज्जड़ बैल (वाहन को) (तोड़ देते हैं,) वैसे ही धर्मरूपी यान में जोते हुए आत्म-संयम में दुर्बल तथा अविनीत शिष्य भी निस्संदेह (धर्म-यान को) छिन्न-भिन्न कर देते हैं।

75. हे पूज्य! सामायिक से जीव (मनुष्य) क्या उत्पन्न करता है? सामायिक से (जीव) अशुभ प्रवृत्ति से निवृत्ति उत्पन्न करता है।

76. हे पूज्य! प्रायश्चित करने से जीव (मनुष्य) क्या उत्पन्न करता है ? प्रायश्चित करने से जीव अशुभ कर्मों की शुद्धि को उत्पन्न करता है और (वह) (आचरण में) निर्दोष रहता है। और शुद्धिपूर्वक प्रायश्चित को अंगीकार करता हुआ (वह) साधन और साधन के फल को निर्मल बनाता है तथा चरित्र और चरित्र के फल की आराधना करता है।

77. हे पूज्य! खमाने (क्षमा मांगने) से मनुष्य क्या उत्पन्न करता है ? खमाने से (वह) आनन्ददायक भाव उत्पन्न करता है। और आनन्ददायक भाव को पहुँचा हुआ (मनुष्य) सब प्राणियों, जन्तुओं, जीवों (और) प्राणवानों के प्रति मैत्री-भाव उत्पन्न करता है। और मैत्री-भाव को पहुँचा हुआ मनुष्य भावों की शुद्धि करके निर्भय हो जाता है।

78. हे पूज्य! धर्म-कथा से मनुष्य क्या उत्पन्न करता है ? धर्म-कथा से (वह) प्रवचन (अध्यात्म) को गौरवित (प्रभाव-युक्त) करता है, (तथा) प्रवचन (अध्यात्म) को प्रभाव-युक्त करने से मनुष्य निःस्वार्थ कल्याण के लिए कर्मों का उपार्जन करता है।

79 सुयस्स आराहणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? सुयस्स आराहणयाए अन्नाणं खवेइ, न य संकिलिस्सइ ।

80 एगग्गमणसन्निवेसणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? एगग्गमणसन्निवेसणयाए णं चित्तनिरोहं करेइ ।

81 अप्पडिबद्धयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? अप्पडिबद्धयाए णं निस्संगत्तं जणयइ । निस्संगत्तेणं जीवे एगे एगग्गचित्ते दिया वा राओ वा असज्जमाणे अप्पडिबद्धे यावि विहरइ ।

82 वीयरागयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? वीयरागयाए णं नेहाणुबंधणाणि तण्हाणुबंधणाणि य वोच्छिदइ, मणुन्नेसु सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधेसु चेव विरज्जइ ।

83 अज्जवयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? अज्जवयाए णं काउज्जुययं भावुज्जुययं भासुज्जुययं अविसंवायणं जणयइ । अविसंवायण-संपन्नयाए णं जीवे धम्मस्स आराहए भवइ ।

79. हे पूज्य ! ज्ञान की आराधना से मनुष्य क्या उत्पन्न करता है ? (वह) ज्ञान की आराधना से (अपने तथा दूसरों के) अज्ञान को दूर हटाता है और कभी दु:खी नहीं होता है ।

80. हे पूज्य! एक लक्ष्य पर मन को ठहराने से मनुष्य क्या उत्पन्न करता है ? एक लक्ष्य पर मन को ठहराने से (वह) चित्त का निरोध (नियंत्रण) करता है ।

81. हे पूज्य ! अनासक्ति से मनुष्य क्या उत्पन्न करता है ? अनासक्ति से (वह) (अपने में) निर्लिप्तता उत्पन्न करता है । निर्लिप्तता से मनुष्य (दूसरे की) सहायता (की आवश्यकता से) रहित (तथा) दिन में और रात में एकाग्र चित्त (वाला) (होता है)। और (वस्तुओं में) आसक्ति न करता हुआ (वह) न बंधा हुआ (स्वतन्त्र) (ही) विहार करता है ।

82. हे पूज्य ! वीतरागता से मनुष्य क्या उत्पन्न करता है ? (वह) वीतरागता से राग-संबधों को तथा तृष्णा-बन्धनों को तोड़ देता है । (और) मनोहर शब्द, स्पर्श, रस, रूप (तथा) गन्ध से भी निर्लिप्त हो जाता है ।

83. हे पूज्य ! आर्जवता (निष्कपटता) से मनुष्य क्या उत्पन्न करता है ? आर्जवता से (वह) काया की सरलता, मन का खरापन, भाषा की मृदुता (और) (व्यवहार में) अधूर्तता को उत्पन्न करता है । अधूर्तता की प्राप्ति से जीव धर्म (नैतिकता) का साधक होता है ।

84 जहा महातलागस्स सन्निरुद्धे जलागमे ।
उस्सिचणाए तवणाए कमेणं सोसणा भवे ॥

85 एवं तु संजयस्सावि पावकम्मनिरासवे ।
भवकोडीसंचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जई ॥

86 नाणस्स सव्वस्स पगासणाए
अन्नाण-मोहस्स विवज्जणाए ।
रागस्स दोसस्स य संखएणं
एगंतसोक्खं समुवेइ मोक्खं ॥

87 तस्सेस मग्गो गुरु-विद्धसेवा
विवज्जणा बालजणस्स दूरा ।
सज्झायएगंतनिसेवणा य
सुत्तत्थसंचितणया धिती य ॥

88 रागो य दोसो वि य कम्मबीयं
कम्मं च मोहप्पभवं वदंति ।
कम्म च जाई-मरणस्स मूलं
दुक्खं च जाई-मरणं वयंति ॥

84. यदि बड़े तालाब में जल का आना पूर्णरूप से रोक दिया गया (है), (तो) (जल)- खींचने के द्वारा (तथा) (सूर्य की) गर्मी के द्वारा (जल का) सूखना धीरे-धीरे हो जाता है।

85. इस प्रकार ही संयत (मनुष्य) में अशुभ कर्मों का आगमन नहीं होने के कारण करोड़ों भवों के संचित कर्म तप के द्वारा नष्ट कर दिए जाते हैं।

86. सम्पूर्ण ज्ञान के प्रकटीकरण से, अज्ञान और मूर्च्छा के वहिष्करण से (तथा) राग-द्वेष के विनाश से (मनुष्य) अचल सुख (तथा) स्वतन्त्रता को प्राप्त करता है।

87. गुरु और विद्वान् की सेवा, अज्ञानी मनुष्य का दूर से ही त्याग, स्वाध्याय, एकान्त में (भीड़ से दूर) वसना, सूत्र (आध्यात्मिक वचन) (और) (उसके) अर्थ का चिन्तन तथा धैर्य-यह उसका (आध्यात्मिकता का) पथ (है)।

88. (सभी अर्हत्) कहते हैं (कि) कर्म का बीज (कारण) राग और द्वेष (है)। और (वे ही संक्षेप में पुनः कहते हैं कि) कर्म मूर्च्छा से उत्पन्न (होता है)। (पुनः) (वे) कहते हैं (कि) कर्म ही जन्म-मरण का मूल (है) (तथा) जन्म-मरण ही दुःख (है)।

89 दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो
मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा ।
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो
लोहो हओ जस्स न किंचणाइं ॥

90 विवित्तसेज्जासणजंतियाणं
ओमासणाणं दमिइंदियाणं ।
न रागसत्तू धरिसेइ चित्तं
पराइओ वाहिरिवोसहेहिं ॥

91 कामाणुगिद्धिप्पभवं खु दुक्खं
सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स ।
जं काइयं माणसियं च किंचि
तस्संतगं गच्छइ वीयरागो ॥

92 जहा व किंपागफला मणोरमा
रसेण वण्णेण य भुज्जमाणा ।
ते खुड्डए जीविए पच्चमाणा
एओवमा कामगुणा विवागे ॥

89. जिसके (मन में) मूर्च्छा नहीं है, (उसके द्वारा) दुःख दूर किया गया (है), जिसके (मन में) तृष्णा नहीं है, (उसके द्वारा) मूर्च्छा दूर की गई (है), जिसके (मन में) लोभ नहीं है, (उसके द्वारा) तृष्णा दूर की गई (है), (तथा) जिसके (मन में) (कोई) वस्तु नहीं है, (उसके द्वारा) लोभ दूर किया गया (है)।

90. विवेक-युक्त सोने (और) बैठने में नियंत्रित (व्यक्तियों) के चित्त पर, न्यून भोजन करनेवालों के (चित्त पर) (तथा) जितेन्द्रियों के (चित्त पर) आसक्तिरूपी शत्रु आक्रमण नहीं करते हैं, जैसे औषधियों द्वारा पराजित रोगरूपी शत्रु (शरीर पर आक्रमण नहीं करते हैं)।

91. देव (समूह) सहित समस्त मनुष्य (जाति) का जो कुछ भी कायिक और मानसिक दुःख (है), (वह) विषयों में अत्यन्त आसक्ति से उत्पन्न (होता) है। उस (दुःख) की समाप्ति पर वीतराग पहुँच जाता है।

92. जैसे किंपाक (प्राण-नाशक वृक्ष) के फल खाए जाते हुए (तो) रस और वर्ण में मनोहर होते हैं, (किन्तु) पचाए जाते हुए वे (फल) लघु जीवन को (ही) (समाप्त कर देते हैं), (वैसे ही) इन्द्रिय-विषय परिणाम में इससे (किंपाक-फल से) मिलते-जुलते (होते है)।

93 चक्खुस्स रूवं गहणं वयंति
तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ।
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु
समो उ जो तेसु स वीयरागो ॥

94 रूवेसु जो गेहिमुवेइ तिव्वं
अकालियं पावइ से विणासं ।
रागाउरे से जह वा पयंगे
आलोगलोले समुवेइ मच्चुं ॥

95 भावे विरत्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोघपरंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो
जलेण वा पुक्खरिणीपलासं ॥

96 एविंदियत्था य मणस्स अत्था
दुक्खस्स हेउं मणुयस्स रागिणो ।
ते चेव थोवं पि कयाइ दुक्खं
न वीयरागस्स करेंति किंचि ॥

97 न कामभोगा समयं उवेंति
न यावि भोगा विगइं उवेंति ।
जे तप्पदोसी य परिग्गही य
सो तेसु मोहा विगइं उवेंति ॥

93. (उन्होंने) कहा (कि) (जो) रूप (है) (उसका) ज्ञान चक्षु-इन्द्रिय द्वारा (होता है)। (सामान्य रूप से) (उन्होंने) मनोहर (रूप) को राग का निमित्त कहा (तथा) अमनोहर (रूप) को द्वेष का निमित्त कहा, किन्तु जो उनमें तटस्थ (होता है) वह वीतराग (कहा गया है)।

94. जो रूपों में तीव्र आसक्ति को प्राप्त करता है, वह असामयिक विनाश को पाता है; जैसे रूप से प्रभावित तथा प्रकाश में आसक्त वह पतंगा (असामयिक) मृत्यु को प्राप्त करता है।

95. वस्तु-जगत् से विरक्त मनुष्य दुःख रहित (होता है), संसार के मध्य में विद्यमान भी (वह) दुःख-समूह की इस अविच्छिन्न धारा से मलिन नहीं किया जाता है, जैसे कि कमलिनी का पत्ता जल से (मलिन नहीं किया जाता है)।

96. वास्तव में इन्द्रियों के विषय और मन के विषय आसक्त मनुष्य के लिए दुःख का कारण (होते हैं)। वे (विषय) भी कभी वीतराग के लिए कुछ थोड़े से भी दुःख को उत्पन्न नहीं करते हैं।

97. (व्यक्ति) विषयों के कारण न अविकार (अवस्था) को प्राप्त करते हैं और न विषयों के कारण विकार को प्राप्त करते हैं। जो उनमें द्वेषी और रागी (होता है), वह उनमें मूर्च्छा के कारण (ही) विकार को प्राप्त करता है।

98 विरज्जमाणस्स य इंदियत्था
सद्दाइया तावइयप्पयारा ।
न तस्स सव्वे वि मणुन्नयं वा
निव्वत्तयंती अमणुन्नयं वा ॥

99 सिद्धाण नमो किच्चा सजयाणं च भावओ ।
अत्थधम्मगइं तच्चं अणुसट्ठिं सुणेह मे ॥

100 पभूयरयणो राया सेणिओ मगहाहिवो ।
विहारजत्तं निज्जाओ मंडिकुच्छिंसि चेइए ॥

101 नाणादुम — लयाइण्णं नाणापक्खिनिसेवियं ।
नाणाकुसुमसंछन्नं उज्जाणं नंदणोवमं ॥

102 तत्थ सो पासई साहुं संजयं सुसमाहियं ।
निसन्नं रुक्खमूलम्मि सुकुमालं सुहोइयं ॥

98. शब्द आदि सब ही इन्द्रिय-विषय (हैं) और (उनके) उतने (ही) प्रकार (हैं)। (किन्तु) निर्लिप्त होते हुए उस (मनुष्य) के लिए (वे विषय) (मन में) मनोज्ञता (आकर्षण) या अमोनज्ञता (विकर्षण) उत्पन्न नहीं करते हैं।

99. सिद्धों को और साधुओं को भावपूर्वक नमस्कार करके (मैं) (जीवन के) प्रयोजन (और) (उसके अनुरूप) आचरण के वास्तविक ज्ञान का (जो अनुभव) मेरे द्वारा (किया गया है) (उसके) शिक्षण को (प्रदान करने के लिए उद्यत हूँ)। (तुम सब) (उसको) (ध्यानपूर्वक) सुनो।

100. मगध के शासक, राजा श्रेणिक (जो) सम्पन्न (कहे जाते थे) हवाखोरी को निकले (और) (वे) मण्डिकुक्षो (नामके) बगीचे में (गए)।

101. (वह) बगीचा तरह्-तरह् के वृक्षों और बेलों से भरा हुआ (था), तरह्-तरह् के पक्षियों द्वारा उपभोग किया हुआ (था), तरह्-तरह् के फूलों से पूर्णतः ढका हुआ (था) और इन्द्र के बगीचे के समान (था)।

102. वहाँ उन्होंने (राजा ने) आत्म-नियन्त्रित, सौन्दर्य-युक्त, पूरी तरह से ध्यान में लीन, पेड़ के पास बैठे हुए तथा (सांसारिक) सुखों के लिए उपयुक्त (उम्रवाले) साधु को देखा।

103 तस्स रूवं तु पासित्ता राइणो तम्मि संजए ।
अच्चंतपरमो आसी अतुलो रूवविम्हओ ॥

104 अहो ! वण्णो अहो ! रूवं अहो ! अज्जस्स सोमया ।
अहो ! खंती अहो ! मुत्ती अहो ! भोगे असंगया ॥

105 तस्स पाए उ वंदित्ता काऊण य पयाहिणं ।
नाइदूरमणासन्ने पंजली पडिपुच्छई ॥

106 तरुणो सि अज्जो ! पव्वइओ भोगकालम्मि संजया ।
उवट्ठिओ सि सामण्णे एयमट्ठं सुणेमु ता ॥

107 अणाहो मि महारायं ! नाहो मज्झ न विज्जई ।
अणुकंपगं सुहिं वा वि कंची नाभिसमेमऽहं ॥

108 तओ सो पहसिओ राया सेणिओ मगहाहिवो ।
एवं ते इड्ढिमतस्स कहं नाहो न विज्जई ॥

103. और उसके रूप को देखकर राजा के (मन में) उस साधु के सौंदर्य के प्रति अत्यधिक, परम तथा बेजोड़ आश्चर्य घटित हुआ।

104. (परम) आश्चर्य ! (देखो) (साधु का (मनोहारी) रंग (और) आश्चर्य ! (देखो) (साधु का) (आकर्षक) सौन्दर्य। (अत्यधिक) आश्चर्य ! (देखो) आर्य की सौम्यता; (अत्यन्त) आश्चर्य ! (देखो) (आर्य का) धैर्य; आश्चर्य ! (देखो) (साधु का) संतोष (और) (अतुलनीय) आश्चर्य ! (देखो) (सुकुमार) (साधु की) भोग में अनासक्तता।

105. और उसके चरणों में प्रणाम करके तथा उसकी प्रदक्षिणा करके (राजा श्रेणिक) (उससे) न अत्यधिक दूरी पर (और) न समीप में (ठहरा) (और) (वह) विनम्रता और सम्मान के साथ जोड़े हुए हाथ सहित (रहा) (और) (उसने) पूछा।

106. हे आर्य ! (आप) तरुण हो। हे संयत ! (आप) भोग (भोगने) के समय में साधु बने हुए हो। (आश्चर्य !) (आप) साधुपन में स्थिर (भी) हो। तो इसके प्रयोजन को (चाहता हूँ कि) मैं सुनूँ।

107. (साधु ने कहा) हे राजाधिराज ! (मैं) अनाथ हूँ। मेरा (कोई) नाथ नहीं है। किसी अनुकम्पा करनेवाला (व्यक्ति) या मित्र को भी मैं नहीं जानता हूँ।

108. तब वह मगध का शासक, राजा श्रेणिक हँस पड़ा। (और बोला) आप जैसे समृद्धिशाली के लिए (कोई) नाथ कैसे नहीं है ?

109 होमि नाहो भयंताणं भोगे भुंजाहि संजया ।
मित्त–नाईपरिवुडो माणुस्सं खु सुदुल्लहं ॥

110 अप्पणा वि अणाहो सि सेणिया ! मगहाहिवा ! ।
अप्पणा अणाहो संतो कस्य नाहो भविस्ससि ? ॥

111 एवं वुत्तो नरिंदो सो सुसंभंतो सुविम्हिओ ।
वयणं असुयपुव्वं साहुणा विम्हयन्नितो ॥

112 अस्सा हत्थी मणुस्सा मे पुरं अंतेउरं च मे ।
भुंजामि माणुसे भोए आणा इस्सरियं च मे ॥

113 एरिसे संपयग्गम्मि सव्वकामसमप्पिए ।
कहं अणाहो भवइ मा हु भंते ! मुसं वए ॥

114 न तुमं जाणे अणाहस्स अत्थं पोत्थं न पत्थिवा ! ।
जहा अणाहो भवइ सणाहो वा नराहिवा ! ॥

109. (आप जैसे) पूज्यों के लिए (मैं) नाथ होता हूँ। हे संयत! मित्रों और स्वजनों द्वारा घिरे हुए (रहकर) (आप) भोगों को भोगो, चूँकि सचमुच मनुष्यत्व (मनुष्य-जन्म) अत्यधिक दुर्लभ (होता है)।

110. हे मगध के शासक! हे श्रेणिक! (तू) स्वयं ही अनाथ है। स्वयं अनाथ होते हुए (तू) किसका नाथ होगा?

111. साधु के द्वारा (जब) इस प्रकार कहा गया (तब) पहिले कभी न सुने गए (उसके ऐसे) वचन को (सुनकर) आश्चर्य युक्त वह राजा (श्रेणिक) अत्यधिक हडबड़ाया तथा बहुत अधिक चकित हुआ।

112. मेरे (अधिकार में) हाथी, घोड़े (और) मनुष्य (हैं), मेरे (राज्य में) नगर और राजभवन (हैं)। (मैं) मनुष्य-संबंधी भोगों को (सुखपूर्वक) भोगता हूँ, आज्ञा और प्रभुता मेरी (ही चलती है)।

113. वैभव के ऐसे आधिक्य में (जहाँ) समस्त अभीष्ट पदार्थ (किसी के) समर्पित हैं, (वह) अनाथ कैसे होगा? हे पूज्य! इसलिए (अपने) कथन में झूठ मत (बोलो)।

114. (साधु ने कहा) (मैं) समझता हूँ (कि) हे नरेश! तुम अनाथ के अर्थ और (उसकी) मूलोत्पत्ति को नहीं (जानते हो)। (अतः) हे राजा! जैसे अनाथ या सनाथ होता है, (वैसे तुम्हे समझाऊँगा)

115 सुणेह मे महारायं ! अव्वक्खित्तेण चेयसा ।
जहा अणाहो भवति जहा मे य पवत्तियं ॥

116 कोसंबी नाम नयरी पुराणपुरभेयणी ।
तत्थ आसी पिया मज्झं पभूयधणसंचओ ॥

117 पढमे वए महारायं ! अतुला मे अच्छिवेयणा ।
अहोत्था विउलो दाहो सव्वगत्तेसु पत्थिवा ॥

118 सत्थं जहा परमतिक्खं सरीरविवरंतरे ।
पविसेज्ज अरी कुद्धो एवं मे अच्छि वेयणा ॥

119 तियं मे अंतरिच्छं च उत्तमंगं च पीडई ।
इंदासणिसमा घोरा वेयणा परमदारुणा ॥

120 उवट्ठिया मे आयरिया विज्जा–मंतचिगिच्छगा ।
अबीया सत्थकुसला मंत–मूलविसारया ॥

115. जैसे (कोई व्यक्ति) अनाथ होता है और जैसे मेरे द्वारा उसका (अनाथ शब्द का) अर्थ संस्थापित (है), (वैसे) हे राजाधिराज ! मेरे द्वारा (किए गए) (प्रतिपादन को) एकाग्र चित्त से सुनो ।

116. प्राचीन नगरों से अन्तर करनेवाली कौशाम्बी नामक (मनोहारी) नगरी थी । वहाँ मेरे पिता रहते थे । (उनके) (पास) प्रचुर धन का संग्रह था ।

117. हे राजाधिराज ! (एक बार) प्रथम उम्र में अर्थात् तरुणावस्था में मेरी आँखों में असीम पीड़ा (हुई) (जो) आश्चर्यजनकरूप से (आँखों में) टिकी रहनेवाली (थी) । (और) हे नरेश ! शरीर के सभी अंगो में बहुत जलन (होती रही)।

118. जैसे क्रोध-युक्त दुश्मन अत्यधिक तीखे शस्त्र को शरीर के छिद्रों के अन्दर घुसाता है (और उससे जो पीड़ा होती है) उसी प्रकार मेरी आँखों में पीड़ा (बनी हुई थी) ।

119. इन्द्र के वज्र (शस्त्र) के द्वारा (किए गए आघात से उत्पन्न पीड़ा के) समान मेरी कमर और (मेरे) हृदय तथा मस्तिष्क में अत्यन्त तीव्र (और) भयंकर पीड़ा (थी) । (उस पीडा ने मुझे) (अत्यधिक) परेशान किया ।

120. अलौकिक विद्याओं और मंत्रों के द्वारा इलाज करनेवाले, (चिकित्सा)-शास्त्र में योग्य, मंत्रों के आधार में प्रवीण, अद्वितीय (चिकित्सा)-आचार्य मेरा (इलाज करने के लिए) पहुँचे ।

121 ते मे तिगिच्छं कुव्वंति चाउप्पायं जहाहियं ।
न य दुक्खा विमोयंति एसा मज्झ अणाहया ॥

122 पिया मे सव्वसारं पि देज्जाहि मम कारणा ।
न य दुक्खा विमोयंति एसा मज्झ अणाहया ॥

123 माया वि मे महाराय ! पुत्तसोगदुहऽट्टिया ।
न य दुक्खा विमोयंति एसा मज्झ अणाहया ॥

124 भायरो मे महाराय ! सगा जेट्ठ–कणिट्ठगा ।
न य दुक्खा विमोयंति एसा मज्झ अणाहया ॥

125 भइणीओ मे महारय ! सगा जेट्ठ–कणिट्ठगा ।
न य दुक्खा विमोयंति एसा मज्झ अणाहया ॥

126 भारिया मे महाराय ! अणुरत्ता अणुव्वया ।
अंसुपुण्णेहिं नयणेहिं उरं मे परिसिंचई ॥

127 अन्नं पाणं च ण्हाणं च गंध–मल्लविलेवणं ।
मए णायमणायं वा सा बाला नोवभुंजई ॥

121. जैसे हितकारी हो (वैसे) उन्होंने मेरी चार प्रकार की चिकित्सा की, किन्तु (इसके बावजूद भी) (उन्होंने) (मुझे) दुःख से नहीं छुड़ाया। यह मेरी अनाथता (है)।

122. (हे राजाधिराज!) (जैसे) (तुम्हें) देना चाहिए (वैसे) मेरे पिता ने मेरी (चिकित्सा के) प्रयोजन से (चिकित्सकों को) सभी प्रकार की धन-दौलत भी (दी), फिर भी (पिता ने) (मुझे) दुःख से नहीं छुड़ाया। यह मेरी अनाथता (है)।

123. हे राजाधिराज! मेरी माता भी पुत्र के कष्ट के दुःख से पीडित (थी), फिर भी (मेरी माता ने) (मुझे) दुःख से नहीं छुड़ाया। यह मेरी अनाथता है।

124. हे महाराज! मेरे भाई ने (चाहे वह) छोटा (हो) (चाहे) बड़ा (और) मेरे मित्रों ने भी (मुझे) (भरसक प्रयत्न करने पर भी) दुःख से नहीं छुड़ाया। यह मेरी अनाथता (है)।

125. हे राजाधिराज! मेरी निजी छोटी-बड़ी बहनों ने भी (भरसक प्रयत्न किया) (किन्तु) (उन्होंने) (भी) मुझे दुःख से नही छुड़ाया। यह मेरी अनाथता है।

126. हे राजाधिराज! पतिव्रता (और) मुझ से संतुष्ट मेरी पत्नी ने आँसू भरे हुए नेत्रों से मेरी छाती को भिगोया।

127. मेरे द्वारा जाना गया (हो) अथवा न जाना गया (हो), (तो भी) वह (मेरी पत्नी), (जो) तरुणी (थी), (कभी भी) भोजन और पेय पदार्थ का तथा स्नान, सुगन्धित द्रव्य, फूल (और) (किसी प्रकार के) खुशबूदार लेप का उपयोग नहीं करती (थी)।

128 खणं पि मे महाराय ! पासाओ वि न फिट्टई ।
न य दुक्खा विमोएइ एसा मज्झ अणाहया ॥

129 तओ हं एवमाहंसु दुक्खमा हु पुणो पुणो ।
वेयणा अणुभविउं जे संसारम्मि अणंतए ॥

130 सइं च जइ मुच्चिज्जा वेयणा विउला इओ ।
खंतो दंतो निरारंभो पव्वए अणगारियं ॥

131 एवं च चिंतइत्ताणं पासुत्तो मि नराहिवा ! ।
परियत्तंतीए राईए वेयणा मे खयं गया ॥

132 तओ कल्ले पभायम्मि आपुच्छित्ताण बंधवे ।
खंतो दंतो निरारंभो पव्वइओ अणगारियं ॥

133 तो हं नाहो जाओ अप्पणो य परस्स य ।
सव्वेसिं चेव भूयाणं तसाणं थावराण य ॥

128. हे राजाधिराज ! मेरी (पत्नी) एक क्षण के लिए भी (मेरे) पास से ही नहीं जाती (थी), फिर भी (उसने) (मुझे) दुःख से नहीं छुड़ाया ।

129. तब मैंने (अपने मन में) इस प्रकार कहा (कि) (इस) अनन्त संसार में (व्यक्ति को) निश्चय ही असह्य पीडा बार-बार (होती) (है), जिसको अनुभव करके (व्यक्ति अवश्य ही दुःखी होता है) ।

130. यदि (मैं) इस घोर पीड़ा से तुरन्त ही छुटकारा पा जाऊँ, (तो) (मैं) साधु-संबंधी दीक्षा में (प्रवेश करूंगा) (जिससे) (मैं) क्षमा-युक्त, जितेन्द्रिय और हिंसा-रहित (हो जाऊँगा)।

131. हे राजा ! इस प्रकार विचार करके ही (मैं) सोया था। (आश्चर्य !) क्षीण होती हुई रात्रि में मेरी पीडा (भी) विनाश को प्राप्त हुई ।

132. तब (मैं) प्रभात में (अचानक) निरोग (हो गया) । (अतः) बन्धुओं को पूछकर साधु-संबंधी (अवस्था) में प्रवेश कर गया । (जिसके फलस्वरूप) (मैं) क्षमा-युक्त, जितेन्द्रिय तथा हिंसा-रहित (बना) ।

133. इसीलिए मैं निज का और दूसरे का भी तथा त्रस और स्थावर सब ही प्राणियों का नाथ बन गया ।

134 अप्पा नदी वेयरणी अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुहा धेणू अप्पा मे नंदणं वणं ।।

135 अप्पा कत्ता विकत्ता य दुक्खाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठियसुपट्ठिओ ।।

136 इमा हु अन्ना वि अणाहया निवा !
तमेगचित्तो निहुओ सुणेहि मे ।
नियंठधम्मं लभियाण वी जहा
सीयंति एगे, बहुकायरा नरा ।।

137 जे पव्वइत्ताण महव्वयाइं
सम्मं नो फासयती पमाया ।
अनिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे
न मूलओ छिंदइ बंधणं से ।।

134. (हे राजन् !) मेरी आत्मा (ही) वैतरणी (नामक) नदी (है) अर्थात् नारकीय कष्ट देने वाली नदी है; (मेरी) आत्मा (ही) तेज काँटों से युक्त वृक्ष है (नरक में स्थित वृक्ष विशेष है); मेरी आत्मा (ही) अभीष्ट पदार्थों को देने वाली गाय (है) (स्वर्ग की गाय जो सब कामनाओं की पूर्ति करने वाली होती है); (तथा) (मेरी) आत्मा (ही) सुहावना आवास-स्थल (है) (नन्दन नाम का इन्द्र का उद्यान है)।

135. आत्मा सुखों और दुःखों का कर्ता (है) तथा (उनका अकर्ता[1] भी (है)। शुभ में स्थित आत्मा मित्र (है) और अशुभ में स्थित (आत्मा) शत्रु (है)।

136. हे नरेश ! यह (आगे कही जाने वाली) भी दूसरी अनाथता ही (है)। तुम मेरे द्वारा (प्रतिपादित अर्थ को) स्थिर (और) शान्त चित्त (होकर) सुनो। चूँकि साधु-चारित्र को भी प्राप्त करके कुछ मनुष्य (प्रसन्न होने के बजाय) दुःखी होते हैं, (अतः) (वे) बहुत कायर (बन जाते है)।

137. जो (व्यक्ति) साधु होकर (भी) महाव्रतों का प्रमाद (मूर्च्छा) के कारण उचित रूप से पालन नहीं करता है, जिसका) मन नियंत्रण-रहित (होता है) और जो स्वादों में आसक्त (होता है), वह परतंत्रता को पूर्णरूप से नष्ट नहीं करता है।

---

1. केवलज्ञान अवस्था में आत्मा सुख-दुःख का कर्ता नहीं होता है।

138 आउत्तया जस्स य नत्थि काई
इरियाए भासाए तहेसणाए ।
आयाण-निक्खेव दुगुंछणाए
न वीरजायं अणुजाइ मग्गं ।।

139 चिरं पि से मुंडरुई भवित्ता
अथिरव्वए तव-नियमेहिं भट्ठे ।
चिरं पि अप्पाण किलेसइत्ता
न पारए होइ हु संपराए ।।

140 पोल्लेव मुट्ठी जह से असारे
अयंतीए कूडकहावणे वा ।
राढामणी वेरुलियप्पकासे
अमहग्घए होइ हु जाणएसु ।।

141 कुसीललिंगं इह धारइत्ता
इसिज्झयं जीविय विहइत्ता ।
असंजए संजय लप्पमाणे
विणिघायमागच्छइ से चिरं पि ।।

138. जिस (व्यक्ति) के ईर्या (चलने) में, भाषा (बोलने) में और एषणा (भोजन) में, आदान-निक्षेपण (वस्तुओं को उठाने-रखने) में, (शारीरिक) गन्दगी की व्यवस्था में कुछ भी सावधानी (अहिंसात्मक दृष्टि) नहीं है, (वह) वीरों द्वारा चले हुए मार्ग का अनुसरण नहीं करता है।

139. (जो) दीर्घ काल तक (बाह्य) दृष्टि से साधु-अवस्था में संलग्न रहकर भी (अहिंसात्मक) चरित्र में डावाँ-डोल (होता है), (तथा) तप और नियमों से विचलित होता रहता है), वह दीर्घ काल तक निज को दुःख देकर भी संसार (परतन्त्रता) में ही (डूबा हुआ रहता है) और (उसको) पार करने की योग्यता रखनेवाला नहीं होता है।

140. वह (कथित साधु-अवस्था) खाली मुट्ठी की तरह ही निरर्थक होती है; खोटे सिक्के की तरह अनादरणीय (होती है); (वह) काँच-मणि (के समान बनी रहती है) (जो) वैडूर्य रत्न की (केवल बाह्य) चमकवाली (होती है)। (अतः) (वह) ज्ञानियों में मूल्यरहित होती है।

141. वह (कथित प्रकार का साधु) दुराचरण-पूर्ण वेश को धारण करके इस लोक में (रहता है) (तथा) साधु-चिन्ह को बनाए रखकर (भी) आजीविका में (मन लगाता है)। (इस तरह से) (अपने) असंयत (जीवन) को संयत (जीवन) कहते हुए (वह) दीर्घ काल तक भी संसार (परतंत्रता) को प्राप्त करता है।

142 विसं तु पीयं जह कालकूडं
हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं ।
एसेव धम्मो विसओववन्नो
हणाइ वेयाल इवाविवन्नो ॥

143 जे लक्खणं सुविणं पउंजमाणे
निमित्त – कोऊहलसंपगाढे ।
कुहेडविज्जासवदारजीवी
न गच्छई सरणं तम्मि काले ॥

:

144 तमं तमेणेव उ से असीले
सया दुही विप्परियासुवेई ।
संधावई नरग – तिरिक्खजोणिं
मोणं विराहेत्तु असाहुरूवे ॥

145 न तं अरी कंठछेत्ता करेइ
जं से करे अप्पणिया दुरप्पा ।
से णाहिई मच्चुमुहं तु पत्ते
पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ॥

142. जैसे कि पिया हुआ हलाहल विष, जैसे कि गलत ढंग से पकड़ा हुआ शस्त्र और जैसे कि शक्तिशाली पिशाच (व्यक्ति को) नष्ट कर देता है, वैसे ही विषयों से युक्त आचरण (भी) (व्यक्ति को) नष्ट कर देता है।

143. जो (साधु) (शुभ-अशुभ फल बतलाने के लिए) शरीर-चिन्ह को तथा स्वप्न को काम में लेता हुआ (समाज में रहता है), (जो) भविष्यसूचक शकुनों[1] तथा उत्सुकता को उत्तेजित करने वाले कार्यों में अत्यन्त आसक्त (होता है), (जो) मंत्र-तंत्र आदि के ज्ञान के द्वारा, ऐन्द्रजालिक कुशलता के द्वारा तथा हिंसादि के माध्यम से जीनेवाला (होता है), वह उस समय में (कर्म-फल भोगने के समय में) (किसी के) आसरे को प्राप्त नहीं करता है।

144. जो आचरणरहित (साधु) (है) (वह) अंधकार (मूल्यों के अभाव) में (ही) (रहता है), (वह) (उस) अंधकार के द्वारा ही विपरीतता (अध्यात्मरहित) को प्राप्त करता है और (इसलिये) सदा दु:खी होता (रहता है)। (फलत:) नरक और तिर्यंच योनि की ओर तेजी से दौड़ता है।

145. जिस (खराबी) को अपनी दुष्ट मानसिकताएँ उत्पन्न करती हैं, उस (खराबी) का गला काटनेवाला दुश्मन (भी) उत्पन्न नहीं करता है। (इस बात को) (जीवनभर जीवों की) करुणा से रहित (मनुष्य) (जो) मृत्यु के द्वार पर पहुँचा हुआ (है), वह पश्चाताप के साथ समझेगा।

---

1. शकुन = विशिष्ट पशु, पक्षी, व्यक्ति, वस्तु व्यापार के देखने, सुनने, होने आदि से मिलने वाली शुभ-अशुभ की पूर्व सूचना।

146 तुट्ठो य सेणिओ राया इणमुदाहु कयंजली ।
अणाहत्तं जहाभूयं सुट्ठु मे उवदंसियं ॥

147 तुज्झं सुलद्धं खु मणुस्सजम्मं
लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी ! ।
तुब्भे सणाहा य सबंधवा य
जं मे ठिया मग्गे जिणुत्तमाणं ॥

148 तं सि नाहो अणाहाणं सव्वभूयाण संजया ! ।
खामेमि ते महाभाग ! इच्छामि अणुसासिउं ॥

149 पुच्छिऊण मए तुब्भं झाणविग्घो उ जो कओ ।
निमंतिया य भोगेहिं तं सव्वं मरिसेहि मे ॥

150 एवं थुणित्ताण स रायसीहो
अणगारसीहं परमाए भत्तिए ।
सओरोहो सपरिजणो य
धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा ॥

146. राजा श्रेणिक बिल्कुल संतुष्ट हुआ (और) (प्रणाम के लिए) हाथों को (ऊँचा) किए हुए यह (वाक्य) बोला, "(आपके द्वारा) समझाई हुई अनाथता मेरे द्वारा अच्छी तरह से (समझ ली गई है)।

147. हे महर्षि ! सचमुच आपके द्वारा मनुष्य-जन्म ठीक तरह से लिया गया है तथा आपके द्वारा (उसके) लाभ ठीक तरह से प्राप्त किए गए हैं। आप सनाथ (हैं) और बन्धुओं सहित (हैं), चूँकि आप जितेन्द्रियों द्वारा (प्रतिपादित) श्रेष्ठ मार्ग पर स्थित (हैं)।

148. हे संयत! आप अनाथों के नाथ हो, (आप) सब प्राणियों के (नाथ) (हो)। हे पूज्य ! मैं (आप से) क्षमा चाहता हूँ (और) आपके द्वारा शिक्षण प्रदान किए जाने की इच्छा करता हूँ।

149. तो प्रश्न करके मेरे द्वारा जो आपके ध्यान में बाधा दी गई और भोगों मे (रमने के लिए) मेरे द्वारा (जो) (आपको) निमन्त्रण दिया गया (है), उस सबको (आप) क्षमा करे।

150. इस प्रकार वह राजप्रमुख परम भक्ति के साथ साधुप्रमुख की स्तुति करके रानियों-सहित तथा अनुयायी वर्ग-सहित शुद्ध मन से अध्यात्म में अनुराग-युक्त हुआ।

151 ऊससियरोमकूवो काऊण य पयाहिणं ।
अभिवंदिऊण सिरसा अतियाओ नराहिवो ॥

152 इयरो वि गुणसमिद्धो तिगुत्तिगुत्तो तिदंडविरओ य ।
विहग इव विप्पमुक्को विहरइ वसुहं विगयमोहो ॥

151. (अध्यात्म में अनुराग-युक्त होने से) (राजा का) रोम-रोम प्रसन्न था। राजा (साधु की) प्रदक्षिणा करके और सिर से प्रणाम करके (वहाँ से) चला गया।

152. (जिसका) मोह नष्ट हुआ (है), (जो) गुणों से भरपूर (है), (जो) मन-वचन-काय के संयम से युक्त (है), (और) (जो) मन-वचन-काय की हिंसा से दूर (है), ऐसा दूसरा (व्यक्ति) अर्थात् साधु भी स्वतन्त्र हुए पक्षी की तरह पृथ्वी पर विचरा।

व्याकरणिक विश्लेषण

1. आणानिद्देसकरे [(आणा)-(निद्देसकर) 1/1 वि] गुरूणमुववायकारए [(गुरूणं) + (उववाय) + (कारए)] [(गुरु) - (उववाय) - (कारअ) 1/1 वि] इंगियाकारसंपन्ने[1] [(इंगिय + (आकार) + (संपन्ने)] [(इंगिय) - (आकार) - (संपन्न) भूकृ 1/1 अनि] से (त) 1/1 सवि विणीए (विणीअ) 1/1 वि त्ति (अ) = शब्दस्वरूपद्योतक वुच्चई (वुच्चइ) व कर्म 3/1 सक अनि.

2. मा (अ) = नहीं गलिअस्से [(गलिअ) + (अस्से)] [(गलिअ) वि (अस्स) 1/1] व (अ) = जैसे कि कसं (कस) 2/1 वयणमिच्छे [(वयणं) + (इच्छे)] वयणं (वयण) 2/1 इच्छे (इच्छ) विधि 3/1 सक पुणो पुणो (अ) = बार बार कसं (कस) 2/1 व (अ) = जैसे कि दट्ठुमाइन्ने [(दट्ठुं) + (आइन्ने)] दट्ठुं (दट्ठुं) संकृ अनि आइन्ने (आइन्न) 1/1 पावगं (पावग) 2/1 वि परिवज्जए (परिवज्ज) विधि 3/1 सक.

3. नापुट्ठो [(न) + (अपुट्ठो)] न (अ) = नहीं अपुट्ठो (अपुट्ठ) भूकृ 1/1 अनि. वागरे (वागर) विधि 3/1 सक किंचि (अ) = कुछ

---

1. पूरी या आधी गाथा के अन्त में आनेवाली 'इ' का क्रियाओं में बहुधा 'ई' हो जाता है (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 138)।

पुट्ठो (पुट्ठ) भूकृ 1/1 अनि वा (अ)=और नालियं [(न)+(आलियं)] न (अ)=नहीं आलियं (आलिय) 2/1 वए (वय) विधि 3/1 सक कोहं (कोह) 2/1 असच्चं (असच्च) 2/1 कुव्वेज्जा (कुव्व) विधि 3/1 सक धारेज्जा (धार) विधि 3/1 सक पियमप्पियं [(पियं+(अप्पियं)] पियं (पिय) 2/1 वि अप्पियं (अप्पिय) 2/1 वि.

4. अप्पा (अप्प) 1/1 चेव (अ)=ही दमेयव्वो (दम) विधिकृ 1/1 हु (अ)=ही खलु (अ)=सचमुच दुद्दमो (दुद्दम) 1/1 वि दंतो (दंत) 1/1 वि सुही (सुहि) 1/1 वि होइ (हो) व 3/1 अक अस्सि (इम) 7/1 लोए (लोय) 7/1 परत्थ (अ)=परलोक में य (अ)=और.

5. वरं (अ)=अधिक अच्छा मे (अम्ह) 3/1 स अप्पा (अप्प) 1/1 दंतो (दंत) 1/1 वि संजमेण (संजम) 3/1 तवेण (तव) 3/1 य (अ)=और मा (अ)=नहीं हं (अम्ह) 1/1 स परेहि (पर) 3/2 दम्मंतो (दम्मंत) वकृ 1/1 अनि बंधणेहि (बंधण) 3/2 वहेहि (वह) 3/2 य (अ)=और

6. पडणीयं (पडणीय) 2/1 च (अ)=पादपूरक बुद्धाणं (बुद्ध) 6/2 वाया (वाय) 5/1 अदुव (अ)=अथवा कम्मुणा (कम्म) 3/1 आवी (अ)=खुले रूप में वा (अ)=या जइ वा (अ)=भले ही रहस्से (रहस्स) 7/1 वि नेव (अ)=कभी न कुज्जा (कु) विधि 3/1 सक कयाइ वि (अ)=किसी समय भी.

7. न (अ)=नहीं लवेज्ज (लव) विधि 3/1 सक पुट्ठो (पुट्ठ) भूकृ 1/1 अनि सावज्जं (सावज्ज) 2/1 वि निरट्ठं (निरट्ठ) 2/1 वि

मम्मयं (मम्मय) 2/1 वि अप्पणट्ठा [(अप्पणं)+(अट्ठा)] [(अप्पणं) वि—(अट्ठ)[1] 5/1] परट्ठा [(पर) + (अट्ठा)] [(पर) —(अट्ठ)[1] 5/1] वा (अ)=या उभयस्संतरेण [(उभयस्स) + (अंतरेण)] [(उभयस्स) —(अंतर)[1] 3/1] वा (अ)=या

8. हियं (हिय) 1/1 वि विगयभया (विगयभय) 1/2 वि बुद्धा (बुद्ध) 1/2 वि फरुसं (फरुस) 2/1 वि पि (अ)=भी अणुसासणं (अणुसासण) 2/1 वेस्सं (वेस्स) 1/1 वि तं (त) 1/1 सवि होइ (हो) व 3/1 अक मूढाणं (मूढ) 4/2 वि खंति-सोहिकरं [(खंति)-(सोहिकर) 1/1 वि पयं (पय) 1/1

9. रमए (रम) व 3/1 अक पंडिए (पंडिअ) 1/1 वि सासं (सासं) वकृ 1/1 अनि हयं (हय) 2/1 भद्दं (भद्द) 2/1 वि व (अ)= जैसे कि वाहए (वाहअ) 1/1 वि बालं (बाल) 2/1 वि सम्मति (सम्म) व 3/1 अक सासंतो (सास) वकृ 1/1 गलिअस्सं [(गलिअ)+(अस्सं)] [(गलिअ) वि—(अस्स) 2/1] व (अ)= जैसे कि वाहए (वाहअ) 1/1 वि.

10. खड्डुगा (खड्डुगा) 1/1 मे (अम्ह) 4/1 स चवेडा (चवेडा) 1/1 अक्कोसा (अक्कोसा) 1/1 य (अ)=तथा वहा (वहा) 1/1 य (अ)=और कल्लाणमणुसासंतं [(कल्लाणं) + (अणुसासंतं)] कल्लाणं (कल्लाण) 2/1 वि अणुसासंतं (अणुसास) वकृ 2/1 पावदिट्ठि[2] (पावदिट्ठि) मूलशब्द 1/1 वि त्ति (अ)=इस प्रकार मन्नइ (मन्न) व 3/1 सक

---

1. 'कारण' अर्थ में तृतीया या पंचमी का प्रयोग होता है।
2. कर्ताकारक के स्थान में केवल मूल संज्ञा शब्द भी काम में लाया जा सकता है (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 518)।

11. चत्तारि (चउ) 1/2 वि परमंगाणि [(परम)+(अंगाणि)] [(परम) वि- (अंग) 1/2] दुल्लहाणिह [(दुल्लहाणि)+(इह)] दुल्लहाणि (दुल्लह) 1/2 वि इह (अ)=इस संसार में जंतुणो (जंतु) 4/1 माणुसत्तं (माणुसत्त) 1/1 सुई (सुइ) 1/1 सद्धा 1/1 संजमम्मि (संजम) 7/1 य (अ)=और वीरियं (वीरिय) 1/1

12. कम्मसंगेहिं [(कम्म)-(संग) 3/2] सम्मूढा (सम्मूढ) 1/2 वि दुक्खिया (दुक्खिय) 1/2 वि बहुवेयणा [(बहु) वि-(वेयण) 1/2]
स्त्री
अमाणुसासु (अमाणुस→अमाणुसा) 7/2 वि जोणीसु (जोणि) 7/2 विणिहम्मंति (विणिहम्मंति) व कर्म 3/2 सक अनि पाणिणो (पाणि) 1/2.

13. कम्माणं (कम्म) 6/2 तु (अ)=किन्तु पहाणाए (पहाण) 4/1 आणुपुव्वी (आणुपुव्वी) 1/1 कयाइ (अ)=किसी समय उ (अ) =भी जीवा (जीव) 1/2 सोहिमणुप्पत्ता [(सोहिं)+(अणुप्पत्ता)] सोहिं (सोहि) 2/1 अणुप्पत्ता (अणुप्पत्त) 1/2 वि आययंति (आयय) व 3/2 सक मणुस्सयं (मणुस्सय) 2/1

14 माणुस्सं (माणुस्स) 2/1 वि विग्गहं (विग्गह) 2/1 लद्धुं (लद्धुं) संकृ अनि सुई (सुइ) 1/1 धम्मस्स (धम्म) 6/1 दुल्लहा
स्त्री
(दुल्लह→दुल्लहा) 1/1 वि जं (ज) 2/1 स सोच्चा (सोच्चा) संकृ अनि पडिवज्जंति (पडिवज्ज) व 3/2 सक तवं (तव) 2/1 खंतिमहिंसयं [(खंतिं)+(अहिंसयं)] खंतिं (खंति) 2/1 अहिंसयं (अहिंसय) 2/1.

15. आहच्च (अ)=कभी सवणं (सवण) 2/1 लद्धुं (लद्धु) संकृ अनि
स्त्री
सद्धा (सद्धा) 1/1 परमदुल्लहा [(परम) वि-(दुल्लह→दुल्लहा)
1/1 वि] सोच्चा (सोच्चा) संकृ अनि णेयाउयं (णेयाउय) 2/1
वि मग्गं (मग्ग) 2/1 बहवे (बहव) 1/1 वि परिभस्सई[1]
(परि-भस्स) व 3/1 अक.

16. सुइं (सुइ) 2/1 च (अ)=और लद्धुं (लद्धु) संकृ अनि सद्धं
(सद्धा) 2/1 च (अ)=भी वीरियं (वीरिय) 1/1 पुण (अ)=
फिर दुल्लहं (दुल्लह) 1/1 वि बहवे (बहव) 1/1 वि रोयमाणा
(रोय) वकृ 1/2 वि (अ)=यद्यपि नो (अ)=नहीं य (अ)=
तथा णं (त) 2/1 स पडिवज्जई[1] (पडिवज्ज) व 3/1 सक.

17. माणुसत्तम्मि[2] (माणुसत्त) 7/1 आयाओ[3] (आया) भूकृ 1/1
जो (ज) 1/1 सवि धम्मं (धम्म) 2/1 सोच्च[4] (सोच्च) संकृ
अनि. सद्दहे (सद्दह) व 3/1 सक तवस्सी (तवस्सि) 1/1 वि
वीरियं (वीरिय) 2/1 लद्धुं (लद्धु) संकृ अनि संवुडो (संवुड) 1/1
वि निद्धुणे (निद्धुण) व 3/1 सक रयं (रय) 2/1

---

1. देखें गाथा 1
2. कभी कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3-135)।
3. यहाँ 'आयाओ' भूकृ कर्तृवाच्य में प्रयुक्त है।
4. 'सोच्चा' का 'सोच्च' छन्द की पूर्ति हेतु किया गया है (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 831)।

18. सोही (सोहि) 1/1 उज्जुयभूयस्स [(उज्जुय) वि-(भूय) 6/1] धम्मो (धम्म) 1/1 सुद्धस्स[1] (सुद्ध) 6/1 वि चिट्ठई[2] (चिट्ठ) व 3/1 अक निव्वाणं (निव्वाण) 2/1 परमं (परम) 2/1 वि जाइ (जा) व 3/1 सक घयसित्ते [(घय)-(सित्त) भूकृ 1/1 अनि] व्व (अ)=की तरह पावए (पावअ) 1/1

19. असंखयं (असंखय) भूकृ 1/1 अनि जीविय (जीविय) मूलशब्द 1/1 मा (अ)=मत पमायए (पमाय) विधि 2/1 अक जरोवणीयस्स [(जरा+(उवणीयस्स)] [(जरा)-(उवणीय) भूकृ 4/1 अनि] हु (अ)=क्योंकि नत्थि (अ)=नहीं ताणं (ताण) 1/1 एवं (अ)=इस प्रकार वियाणाहि[3] (वियाण) विधि 2/1 सक जणे (जण) 1/1 पमत्ते (पमत्त) 1/1 वि किन्नु (अ)=किसका विहिंसा (विहिंस) 1/2 वि अजया (अजय) 1/2 वि गहिंति[4] (गह) भवि 3/2 सक

20. जे (ज) 1/2 पावकम्मेहिं [(पाव)-(कम्म) 3/2] धणं (धण) 2/1 मणुस्सा (मणुस्स) 1/2 समाययंती[5] (समायय) व 3/2 सक अमइं (अमइ) 2/1 गहाय (गह) संकृ पहाय (पहा) संकृ

---

1. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3-134)
2. देखें गाथा 1
3. कभी कभी अकारान्त धातु के अन्त्यस्थ 'अ' के स्थान पर आज्ञार्थ-विध्यर्थक प्रत्ययों का सद्भाव होने पर 'आ' होता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3-158)।
4. 'गह' का भविष्यत् काल होगा 'गहिहिंति' इसमें 'हि' का वैकल्पिक रूप से लोप होता है अतः 'गहिंति' रूप बना (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3-172)।
5. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'ति' को 'ती' किया गया है।

ते (त) 1/2 सवि पास(पास) विधि 2/1 सक पयट्टिए (पयट्टिअ) 2/2 वि नरे (नर) 2/2 वेराणुबद्धा [(वेर)+(अणुबद्धा)] [(वेर)-(अणुबद्ध) 1/2 वि] नरगं (नरग) 2/1 उवेंति (उवे) व 3/2 सक.

21. तेणे (तेण) 1/1 जहा (अ)=जैसे संधिमुहे [(संधि)-(मुह) 7/1] गहीए (गहीए) भूकृ 1/1 अनि सकम्मुणा [(स)-(कम्म) 3/1] कच्चइ (कच्चइ) व कर्म 3/1 सक अनि पावकारी (पावकारि) 1/1 वि. एवं (अ)=इसी प्रकार पया (पया) 8/1 पेच्च (अ) =परलोक में इहं (अ)=इस लोक में च (अ)=और लोए (लोअ) 7/1 कडाण[1] (कड) भूकृ 6/2 अनि कम्माण[1] (कम्म) 6/2 न (अ)=नहीं मोक्खु (मोक्ख) 1/1 अपभ्रंश अत्थि (अस) व 3/1 अक.

22. संसारमावन्न [(संसारं)+(आवन्न)] संसारं 2/1 आवन्न[2] (आवन्न) मूल शब्द भूकृ 1/1 अनि परस्स (पर) 6/1 वि अट्ठा (अट्ठ) 5/1 साहारणं (साहारण) 2/1 वि जं (ज) 2/1 सवि च (अ)=भी करेइ (कर) व 3/1 कम्मं (कम्म) 2/1 कम्मस्स (कम्म) 6/1 ते (त) 1/2 सवि तस्स (त) 6/1 स उ (अ)=ही वेयकाले [(वेय)-(काल) 7/1] न (अ)=नहीं बंधवा (बंधव) 1/2 बंधवयं (बंधव-य) 2/1 (भावार्थ में 'य' प्रत्यय) उवेंति (उवे) व 3/2 सक

---

1. कभी कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पचमी विभक्ति के स्थान पर पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3-134)।
2. किसी भी कारक के लिए मूल सज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है। (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण : पृष्ठ 517) (यह नियम भूकृ वि के लिए भी काम में लिया जा सकता है)

23. वित्तेण (वित्त) 3/1 ताणं (ताण) 1/1 न (अ)=नहीं लभे (लभ) व 3/1 सक पमत्ते (पमत्त) 1/1 वि इमम्मि (इम) 7/1 सवि लोए (लोअ) 7/1 अदुवा (अ)=अथवा परत्था[1] (अ)= परलोक में दीवप्पणट्ठे [(दीव)-(प्पणट्ठ) 7/1 वि] व (अ)= जैसे अणंतमोहे[2] [(अणंत)-(मोह) 7/1] नेयाउयं (नेयाउय) 2/1 वि दट्ठुमदट्ठुमेव [(दट्ठुं)+(अदट्ठुं)+(एव)] दट्ठुं (दट्ठुं) संकृ अनि अदट्ठुं (अदट्ठुं) सकृ अनि एव (अ)=ही.

24. सुत्तेसु[3] (सुत्त) 7/2 वि यावी (अ)=तथा पडिबुद्धजीवी [(पडिबुद्ध) भूकृ अनि—(जीवि) 1/1 वि] न (अ)=नहीं वीससे (वीसस) विधि 3/1 सक पंडिय[4] (पंडिय) मूल शब्द 1/1 आसुपन्ने (आसुपन्न) 1/1 वि घोरा (घोर) 1/2 वि मुहुत्ता (मुहुत्त) 1/2 अबलं (अबल) 1/1 वि सरीरं (सरीर) 1/1 भारंडपक्खी [(भारंड)-(पक्खि) 1/1] व (अ)=की तरह चरऽप्पमत्तो [(चर)+(अप्पमत्तो)] चर (चर) विधि 2/1 सक अप्पमत्तो (अप्पमत्त) 1/1 वि.

25. स (त) 1/1 सवि पुव्वमेवं [(पुव्वं)+(एवं)] पुव्वं (अ)=प्रारंभ में एवं (अ)=ही न (अ)=नहीं लभेज्ज (लभ) भवि 3/1 सक

---

1. यहाँ 'परत्थ' का 'परत्था' है, 'अ' का 'आ' विकल्प से हुआ है, जैसे 'पुण' का 'पुणा' होता है।
2. कभी कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3-135)।
3. 'विश्वास' अर्थ को बतलाने वाले शब्दों के योग में प्रायः (जिस पर विश्वास किया जाता है उसमें) सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है।
4. कर्ताकारक के स्थान में केवल मूल संज्ञा शब्द भी काम में लाया जा सकता है (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 518)।

पच्छा (अ)=बाद में एसोवमा [(एसा) + (उवमा)] एसा (एसा) 1/1 सवि. उवमा (उवमा) 1/1 सासयवाइयाणं [(सासय)—(वाइ) स्वार्थिक 'य' 6/2] विसीयई[1] (विसीय) व 3/1 अक. सिढिले (सिढिल) 7/1 वि आउयम्मि (आउय) 7/1 कालोवणीए [(काल) + (उवणीए)] [(काल)-(उवणीअ) 7/1 वि] सरीरस्स (सरीर) 6/1 भेए (भेअ) 7/1.

26. जहा (अ)=जैसे सागडिओ (सागडिअ) 1/1 वि जाणं (जाण) वकृ 1/1 अनि समं (सम) 2/1 वि हेच्चा (हेच्चा) संकृ अनि महापहं (महापह) 2/1 विसमं[2] (विसम) 2/1 मग्गमोइण्णो [(मग्गं) + (ओइण्णो)] मग्गं[1] (मग्ग) 2/1 ओइण्णो (ओइण्ण) भूकृ 1/1 अनि अक्खे (अक्ख) 7/1 भंगम्मि (भग्ग) भूकृ 7/1 सोयई[3] (सोय) व 3/1 अक.

27. एवं (अ)=इसी तरह धम्मं (धम्म) 2/1 विउक्कम्म (विउक्कम्म) संकृ अनि अहम्मं (अहम्म) 2/1 पडिवज्जिया (पडिवज्ज) संकृ अनि बाले (बाल) 1/1 वि मच्चुमुहं [(मच्चु)—(मुह) 4 2/1] पत्ते (पत्त) भूकृ 1/1 अनि अक्खे (अक्ख) 7/1 भग्गे (भग्ग) भूकृ 7/1 अनि व (अ)=जैसे सोयई[3] (सोय) व 3/1 अक.

1. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।
2. 'गमन' अर्थ की धातुओं के साथ द्वितीया होती है।
3. देखें गाथा 1
4. 'गमन' अर्थ की धातुओं के साथ द्वितीया होती है।

28. तम्रो (प) = बाद में से (न) 1/1 सवि मरणंतम्मि [(मरण) + (अंतम्मि)] [(मरण)-(अंत) 7/1] बाले (बाल) 1/1 वि संतसई[1] (सं-तस) व 3/1 अक भया (भय) 5/1 अकाममरणं [(अकाम) वि-(मरण)[2] 2/1] मरइ (मर) व 3/1 अक धुत्ते (धुत्त) 1/1 वि वा (अ) = जैसे कि कलिणा[3] (कलि) 3/1 जिए (जिअ) भूकृ 1/1 अनि.

29. जावंतऽविज्जापुरिसा [(जावंत) + (अविज्जा) + (पुरिसा)] [(जावंत) वि-(अविज्ज) 1/2 वि] पुरिसा (पुरिस) 1/2 सव्वे (सव्व) 1/2 वि ते (त) 1/2 सवि दुक्खसंभवा [(दुक्ख)-(संभव) 1/2] लुप्पंति (लुप्पंति) व कर्म 3/1 सक अनि बहुसो (अ) = बार-बार मूढा (मूढ) 1/2 वि संसारम्मि (संसार) 7/1 अणंतए (अणंतअ) 7/1 स्वार्थिक 'अ'

30. अज्झत्थं (अज्झत्थ) 2/1 सव्वश्रो (अ) = पूर्णतः सव्वं (सव्व) 2/1 वि दिस्स (दिस्स) संकृ अनि पाणे (पाण) 2/2 पियायए [(पिय) + (आयए)] पिय[4] (अ) = प्रिय रूप में आयए (आयअ) विधि 3/1 सक न (अ) = नहीं हणे (हण) विधि 3/1 सक पाणिणं (पाणि) 6/1 पाणे (पाण) 2/2 भय-वेराओ [(भय)-(वेर) 5/1] उवरए (उवरअ) 1/1 वि

---

1. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।
2. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3-137)।
3. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3-137)।
4 यहाँ 'पियं' के अनुस्वार का लोप हुआ है (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 1-29)

31. जे (अ) 1/2 सवि केइ (अ)=कोई सरीरे (सरीर) 7/1 सत्ता (सत्त) 1/2 वि वन्ने (वन्न) 7/1 रूवे (रूव) 7/1 य (अ)= और सव्वसो (अ)=पूर्णतः मणसा (मण) 3/1 काय-वक्केणं [(काय)-(वक्क) 3/1] सव्वे (सव्व) 1/2 वि ते (त) 1/2सवि दुक्खसंभवा [(दुक्ख)-(संभव) 1/2]

32. भोगामिसदोसविसण्णे [(भोग) + (आमिस) + (दोस) + (विसण्णे)] [(भोग)—(आमिस)-(दोस)-(विसण्ण) 1/1 वि] हियनिस्सेसबुद्धिवोच्चत्थे [(हिय)-(निस्सेस)-(बुद्धि)-(वोच्चत्थ) 1/1 वि] बाले (बाल) 1/1 वि य (अ)=और मंदिए (मंदिअ) 1/1 वि मूढे (मूढ) 1/1 वि बज्झई (बज्झइ)[1] व कर्म 3/1 अनि मच्छिया (मच्छिया) 1/1 व (अ)=जैसे खेलम्मि[2] (खेल) 7/1

33. पाणे (पाण) 2/2 य (अ)=बिल्कुल नाइवाएज्जा [(न) + प्रेरक (अइवाएज्जा)] न (अ)=नहीं अइवाएज्जा (अइवअ→अइवाअ) व 3/1 सक से (त) 1/1 सवि समिए (समिअ) 1/1 वि त्ति (अ) =इस प्रकार वुच्चई[3] (वुच्चइ) व कर्म 3/1 सक अनि ताई (ताइ) 1/1 वि तओ (अ)=उस कारण से (त) 6/1 स पावगं (पावग) 1/1 स्वार्थिक 'ग' कम्मं (कम्म) 1/1 निज्जाइ (निज्जा) व 3/1 अक उदगं (उदग) 1/1 व (अ)=जैसे कि थलाओ (थल) 5/1.

---

1. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।
2. कभी कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3-135)।
3. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।

34. कसिणं (कसिण) 2/1 वि पि (अ)=भी जो (ज) 1/1 सवि इमं (इम) 2/1 सवि लोयं (लोय) 2/1 पडिपुन्नं[1] (क्रिविअ)=पूर्णरूप से दलेज्ज (दल) विधि 3/1 सक एक्कस्स (एक्क) 4/1 वि तेणावि [(तेण)+(अवि)] तेण (त) 3/1 स अवि (अ)=भी से (त) 1/1 सवि ण (अ)=नहीं संतुस्से[2] (संतुस्स) व 3/1 अक इइ (अ)=इस प्रकार दुप्पूरए (दु-प्पूर) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक इमे (इम) 1/1 सवि आया (आय) 1/1

35. जहा (अ)=जैसे लाभो (लाभ) 1/1 तहा (अ)=वैसे ही लोभो (लोभ) 1/1 लाभा[3] (लाभ) 5/1 पवड्ढई[4] (पवड्ढ) व 3/1 अक दोमासकयं [(दो)-(मास)-(कय) भूकृ 1/1 अनि] कज्जं (कज्ज) 1/1 कोडीए (कोडि) 3/1 वि (अ)=भी न (अ)=नहीं निट्ठियं (निट्ठिय) 1/1 वि

36. जो (ज) 1/1 स सहस्स (सहस्स) 2/1 वि सहस्साणं[5] (सहस्स) 6/2 वि संगामे (संगाम) 7/1 दुज्जए (दुज्जअ) 7/1 वि जिणे (जिण) विधि 3/1 सक एगं (एग) 2/1 वि अप्पाणं (अप्पाण) 2/1 जिणेज्ज (जिण) विधि 3/1 सक एस (एत) 1/1 स से (त) 6/1 स परमो (परम) 1/1 वि जओ (जअ) 1/1.

---

1. 'पुन्न' (पूर्ण) नपुंसक लिंग संज्ञा भी होता (English : Monier-Williams P-642) इसी से प्रथमा एक वचन बना कर क्रिया-विशेषण अव्यय बनाया गया है (पडि-पुन्नं)।
2. यहाँ वर्तमान का प्रयोग भविष्यत्काल के लिए हुआ है।
3. किसी कार्य का कारण व्यक्त करने के लिए तृतीया या पंचमी का प्रयोग किया जाता है।
4. देखें गाथा 1
5. कभी कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 1-134)।

37. अप्पाणमेव [(अप्पाणं) + (एव)] अप्पाणं[1] (अप्पाण) 2/1 एव (अ)=ही जुज्झाहि (जुज्झ) विधि 2/1 अक किं (किं) 1/1सवि ते (तुम्ह) 4/1 स जुज्झेण (जुज्झ) 3/1 बज्झओ (अ)=बहिरंग से अप्पाणं (अप्पाण) 2/1 जइत्ता (जअ) संकृ सुहमेहए [(सुहं) +(एहए)] सुहं (सुह) 1/1 एहए (एह) व 3/1 अक

38. सुवण्ण-रुप्पस्स [(सुवण्ण)-(रुप्प) 6/1] उ (अ)=किन्तु पव्वया (पव्वय) 1/2 भवे (भव) विधि 3/2 अक सिया (अ)=कदाचित् हु (अ)=भी केलाससमा [(केलास)—(सम) 1/2 वि] असंखया (असंखय) 1/2 वि नरस्स (नर) 4/1 लुद्धस्स (लुद्ध) 4/1 वि न (अ)=नहीं तेहि (त) 3/2 सवि किंचि (अ)=कुछ इच्छा (इच्छा) 1/1 हु (अ)=क्योंकि आगाससमा [(आगास)—
स्त्री
सम→समा) 1/1 वि] अणंतिया [(अण) + (अंतिया)]
स्त्री
अणंतिया (अणंतिय→अणंतिया) 1/1 वि

39. दुमपत्तए [(दुम)-(पत्तअ) 1/1] पंडुयए (पंडुय-अ) स्वार्थिक 'अ' 1/1 वि जहा (अ)=जैसे निवडइ (निवड) व 3/1 अक राइगणाण [(राइ)-(गण) 6/2] अच्चए (अच्चअ) 7/1 एवं (अ)=इसी प्रकार मणुयाण (मणुय) 6/2 जीवियं (जीविय) 1/1 समयं[2] (समय) 2/1 गोयम (गोयम) 8/1 मा (अ)=मत पमायए (पमाय) विधि 2/1 अक.

---

1. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3-137)।
2. समयवाचक शब्दों में द्वितीया होती है इसका अनुवाद 'क्षण भर' भी ठीक है पर हमने इसका अनुवाद 'अवसर' किया है, क्योंकि गौतम महावीर के सामने है और इससे अच्छा 'अवसर' और क्या हो सकता ?

40. कुसग्गे[1] [(कुस) + (अग्गे)] [(कुस)—(अग्ग) 7/1] जह (अ) =जैसे ओसबिंदुए [(ओस)-(बिंदु-अ) 1/1 स्वार्थिक 'अ'] थोवं[2] (थोव) 2/1 वि चिट्ठइ (चिट्ठ) व 3/1 लम्बमाणए (लम्बमाणअ →लम्ब) वकृ 1/1 स्वार्थिक 'अ' एवं (अ)=इसी प्रकार मणुयाण (मणुय) 6/2 जीवियं (जीविय) 1/1 समयं[3] (समय) 2/1 गोयम (गोयम) 8/1 मा (अ)=मत पमायए (पमाय) विधि 2/1 अक.

41. दुल्लहे (दुल्लभ) 1/1 वि खलु (अ)=वास्तव में माणुसे (माणुस) 1/1 वि भवे (भव) 1/1 चिरकालेण (अ)=बहुत समय के पश्चात् वि (अ)=भी सव्वपाणिणं[4] [(सव्व)-(पाणि) 4/2] गाढा (गाढ) 1/2 वि य (अ)=और विवाग (विवाग) मूल शब्द 1/2 कम्मुणो (कम्मु) 6/1 समयं[3] (समय) 2/1 गोयम (गोयम) 8/1 मा (अ)=मत पमायए (पमाय) विधि 2/1 अक.

42. परिजूरइ (परिजूर) व 3/1 ते (तुम्ह) 6/1 सरीरयं (सरीर) स्वार्थिक 'य' 1/1 केसा (केस) 1/2 पंडुरया (पंडुरय) स्वार्थिक 'य' 1/2 वि. भवंति (भव) व 3/2 अक से (अ)=वाक्य की शोभा सव्वबले [(सव्व) वि-(बल) 1/1] य (अ)=और हायई[5] (हायइ) व कर्म 3/1 सक अनि. समयं[3] (समय) 2/1 गोयम (गोयम) 8/1 मा (अ)=मत पमायए (पमाय) विधि 2/1 अक

1. कुशघास के पत्ते का तेज किनारा (आप्टे : संस्कृत-हिन्दी कोश)।
2. कालवाचक शब्दों में द्वितीया होती है।
3. गाथा 39 देखें।
4. कभी कभी विभक्ति जुड़ते समय दीर्घस्वर कविता में ह्रस्व हो जाते हैं (पिशल, प्रा-भा-व्याकरण : पृष्ठ 182)
5. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।

43. वोच्छिन्द (वोच्छिन्द) भाज्ञा 2/1 सक सिणेहमप्पणो [(सिणेहं) + (अप्पणो)] सिणेहं (सिणेह) 2/1 अप्पणो (अप्प) 6/1 कुमुयं (कुमुय) 1/1 सारइयं (सारइय) 1/1 वि व (अ)=जैसे कि पाणियं (पाणिय) 2/1 से (त) 1/1 सवि सव्वसिणेहवज्जिए [(सव्व)-(सिणेह)-(वज्जिअ) भूकृ 1/1 अनि.] समयं (समय) 2/1 गोयम (गोयम) 8/1 मा (अ)=मत पमायए (पमाय) विधि 2/1 अक.

44. बुद्धे (बुद्ध) 7/1 वि परिनिव्वुए (परिनिव्वुअ) 7/1 वि चरे (चर) विधि 2/1 अक. गाम[1] (गाम) मूल शब्द 7/1 गए (गअ) भूकृ 1/1 अनि नगरे (नगर) 7/1 व (अ)=अथवा संजए (संजअ) 7/1 वि संतिमग्गं [(संति)-(मग्ग) 2/1] च (अ)=इसके अतिरिक्त बूहए=बूहए (बूह=बूह) विधि 2/1 सक समयं[2] (समय) 2/1 गोयम (गोयम) 8/1 मा (अ)=मत पमायए (पमाय) विधि 2/1 अक.

45. जे (ज) 1/1 सवि यावि (अ)=तथा होइ (हो) व 3/1 अक निव्विज्जे (निव्विज्ज) 1/1 वि थद्धे (थद्ध) 1/1 वि लुद्धे (लुद्ध) 1/1 वि अनिग्गहे (अनिग्गह) 1/1 वि अभिक्खणं (अ)=बारंबार उल्लवई[3] (उल्लव) व 3/1 सक अविणीए (अविणीअ) 1/1 वि अबहुस्सुए (अबहुस्सुअ) 1/1 वि.

1. किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण : पृष्ठ 517)
2. गाथा 39 देखें।
3. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।

46. अह (अ)=अच्छा तो पंचहिं (पंच) 3/2 वि ठाणेहिं (ठाण) 3/2 जेहिं (ज) 3/2 सवि सिक्खा (सिक्खा) 1/1 न (अ)=नहीं लब्भई[1] (लब्भइ) व कर्म 3/1 सक अनि थंभा (थंभ) 5/1 कोहा[2] (कोह. 5/1 पमाएणं (पमाअ) 3/1 रोगेणाऽऽलस्सएण [(रोगेण) +(आलस्सएण)] रोगेण (रोग)3/1 आलस्सएण (आलस्स-अ) 3/1 स्वार्थिक 'अ' य (अ)=तथा

47. अह (अ)=और अट्ठहिं (अट्ठ) 3/2 वि ठाणेहिं (ठाण) 3/2 सिक्खासीले (सिक्खासील) 1/1 वि त्ति (अ)=इस प्रकार वुच्चई[3] (वुच्चइ) व 3/1 सक अनि अहस्सिरे (अ-हस्सिर) 1/1 वि सया (अ)=सदा दंते (दंत) 1/1 वि न (अ)=नहीं य (अ)=और मम्ममुयाहरे [(मम्मं)+(उयाहरे)] मम्मं (मम्म) 2/1 उयाहरे (उयाहर) व 3/1 सक

48. नासीले [(न)+(असील)] न (अ)=नही असीले (असील) 1/1वि विसीले (विसील) 1/1 वि सिया (अ)=है अइलोलुए [(अइ)—(लोलुअ) 1/1 वि] अकोहणे (अकोहण) 1/1 वि सच्चरए [(सच्च)—(रअ) 1/1 वि] सिक्खासीले (सिक्खासील) 1/1 त्ति (अ)=इस विवरणवाला वुच्चइ (वुच्चइ) व 3/1 सक अनि.

49. जहा (अ)=जैसे से (अ)=वाक्य की शोभा तिमिरविद्धंसे [(तिमिर—(विद्धंस) 1/1 वि] उत्तिट्ठंते (उत्तिट्ठ) वकृ 1/1 दिवाकरे (दिवाकर) 1/1 जलंते (जल) वकृ 1/1 इव (अ)=मानो एवं (अ) इसी प्रकार भवइ (भव) व 3/1 अक बहुस्सुए (बहुस्सुअ) 1/1वि

---

1. छन्द की मात्रा की पूर्ति 'इ' को 'ई' किया गया है।
2. किसी कार्य का कारण व्यक्त करने वाली (स्त्रीलिंग भिन्न) संज्ञा में तृतीया या पंचमी विभक्ति का प्रयोग होता है।
3. देखें गाथा 1

50. जहा (अ) = जैसे से (अ) = वाक्य की शोभा समाइयाणं (सामाइय) 6/2 कोट्ठागारे (कोट्ठागार) 1/1 सुरक्खिए (सुरक्खिअ) 1/1 वि नाणाधन्नपडिपुन्ने [(नाणा—(धन्न)—(पडिपुन्न) 1/1 वि] एवं (अ) = इसी प्रकार भवइ (भव) व 3/1 अक बहुस्सुए (बहुस्सुअ) 1/1 वि

51. जहां (अ) = जैसे से (अ) = वाक्य की शोभा संयभुरमणे (संयभुरमण) 1/1 उदही (उदहि) 1/1 अक्खओदए [(अक्खअ) + (उदए)] [(अक्खअ)—(उदअ) 1/1] नाणारयणपडिपुण्णे [(नाणा)-(रयण)-(पडिपुण्ण) 1/1 वि] एवं (अ) = इसी प्रकार भवइ (भव) व 3/1 अक बहुस्सुए (बहुस्सुअ) 1/1 वि

52. इह (इम) 7/1 जीविए (जीविअ) 7/1 राय (राय) 8/1 असासयम्मि (असासय) 7/1 धणियं (क्रिविअ) अतिशयरूप से तु (अ) = पादपूरक पुन्नाइं (पुन्न) 2/2 अकुव्वमाणो (अकुव्व) वकृ 1/1 से (त) 1/1 सवि सोयई (सोय) व 3/1 अक मच्चुमुहोवणीए [(मच्चु) + (मुह) + (उवणीए)] [(मच्चु) - (मुह)—(उवणीअ) 7/1 वि] धम्मं (धम्म) 2/1 अकाऊण (अका) संकृ परम्मि (पर) 7/1 लोए (लोअ) 7/1

53. जहेह [(जह) + (इह)] जह (अ) = जैसे इह (अ) = यहाँ सीहो (सीह) 1/1 व (अ) = पादपूरक मियं (मिय) 2/1 गहाय (गह) संकृ मच्चू (मच्चु) 1/1 नरं (नर) 2/1 नेइ (नी) व 3/1 सक हु (अ) = निस्संदेह अंतकाले [(अंत)—(काल) 7/1] न (अ) = नहीं तस्स (त) 6/1 स माया (माउ) 1/1 व (अ) = और पिया (पिउ) 1/1 व (अ) = और भाया (भाउ) 1/1 कालम्मि (काल) 7/1 तम्मंसहरा [(तम्मि) + (अंसहरा)] तम्मि (त) 7/1 स (अंसहरा) 1/2 वि भवंति (भव) व 3/2 अक.

54. न (अ) = नहीं तस्स (त) 6/1 स दुक्खं (दुक्ख) 2/1 विभयंति (विभय) व 3/2 सक नायओ (नाय-अ) स्वार्थिक 'अ' 1/1 वि मित्तवग्गा [(मित्त)-(वग्ग)) 1/2] सुया (सुय) 1/2 बंधवा (बंधव) 1/2 एगो (एग) 1/1 वि सयं (अ)=स्वयं पच्चणुहोइ (पच्चणुहो) व 3/1 सक दुक्खं (दुक्ख) 2/1 कत्तारमेवा [(कत्तारं) + (एवा)] कत्तारं (कत्तार) 2/1 एवा[1] (अ)=ही अणुजाइ (अणुजा) व 3/1 सक कम्मं (कम्म) 1/1

55. चेच्चा (चेच्चा) संकृ अनि दुपयं (दुपय) 2/1 च (अ) = और चउप्पयं (चउप्पय) 2/1 खेत्तं (खेत्त) 2/1 गिहं (गिह) 2/1 धण[2] (धण) मूलशब्द 2/1 धन्नं (धन्न) 2/1 च (अ) = और सव्वं (सव्व) 2/1 वि सकम्मबिइओ [(स) + (कम्म) + (अबिइओ)] [(स) वि—(कम्म)—(अबिइअ) 1/1 वि] अवसो (अवस) 1/1 वि पयाइ (पया) व 3/1 सक परं (पर) 2/1 वि भवं (भव) 2/1 सुंदर[3] (सुंदर) (मूल शब्द) 2/1 वि पावगं (पावग) 2/1 वा (अ) = अथवा

56. अच्चेइ (अच्चेइ) व 3/1 अक अनि कालो (काल) 1/1 तूरंति (तूर) व 3/2 अक राइओ[4] (राइ) 1/2 न (अ) = नहीं यावि [(य) + (आवि)] य (अ) = और आवि (अ) = भी भोगा (भोग) 1/2 पुरिसाण (पुरिस) 6/2 निच्चा (निच्च) 1/2 वि

---

1. मात्रा के लिए दीर्घ।
2. किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है (पिशल : प्राकृत-भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)।
3. कभी कभी 'और' अर्थ को प्रकट करने के लिए दो बार 'च' का प्रयोग किया जाता है।
4. छन्द की मात्रा के लिए 'ई' को 'इ' किया गया है।

उवेच्च (उवेच्च) संकृ भोगा (भोग) 1/2 पुरिसं (पुरिस) 2/1 चयंति (चय) व 3/2 सक दुमं (दुम) 2/1 जहा (अ)=जैसे खीण फलं (खीणफल) 2/1 वि व (अ)=जैसे पक्खी (पक्खि) 1/2

57. खणमेत्तसोक्खा [(खणमेत्त-(सोक्ख) 1/2 वि] बहुकालदुक्खा [(बहु) वि-(काल)-दुक्ख) 1/2 वि] पकामदुक्खा [(पकाम) वि-(दुक्ख) 1/2 वि] अनिकामसोक्खा [(अनिकाम)-(सोक्ख) 1/2 वि] संसारमोक्खस्स [(संसार)-(मोक्ख) 6/1] विपक्खभूया [(विपक्ख)-(भूय) 1/2 वि] खाणी (खाणि) 1/1 अणत्थाण (अणत्थ) 6/2 उ (अ)=निश्चय ही कामभोगा [(काम)-(भोग) 1/2]

58. परिव्वयंते (परिव्वय) वकृ 1/1 अनियत्तकामे [(अ-नियत्त) भूकृ अनि-(काम) 1/1] अहो (अ)=दिन में य (अ)=और राओ (अ)=रात में परितप्पमाणे (परितप्प) वकृ 1/1 अण्णप्पमत्ते [(अण्ण)-(प्पमत्त) 1/1 वि] धणमेसमाणे [(धणं)+(एसमाणे)] धणं (धण) 2/1 एसमाणे (एसमाण) वकृ 1/1 पप्पोति (पप्पोति) व 3/1 सक अनि मच्चुं (मच्चु) 2/1 पुरिसे (पुरिस) 1/1 जरं (जरा) 2/1 च (अ)=और

59. इमं (इम) 1/1 सवि च[1] (अ)=और मे (अम्ह) 6/1 स अत्थि (अ)=है नत्थि (अ)=नहीं च (अ)=और मे (अम्ह) 3/1 स

---

1. दो वाक्यों अथवा शब्दों को जोड़ने के लिए कभी-कभी दो 'च' का प्रयोग 'और' अर्थ में किया जाता है।

किच्च[1] (किच्च) मूल शब्द 1/1 वि अकिच्चं (अकिच्च) 1/1 वि तं (त) 2/1 सवि एवमेवं [(एवं) + (एवं)] एवं (अ)=इस प्रकार एवं (अ)=ही लालप्पमाणं (लालप्प) वकृ 2/1 हरा[2] (हर) 1/2 हरंति (हर) व 3/2 सक त्ति (अ)=अतः कहं (अ)=कैसे पमाए (पमाय) 1/1

60. जा (ज) 1/1 सवि वच्चइ (वच्च) व 3/1 रयणी (रयणी) 1/1 न (अ)=नहीं सा (ता) 1/1 सवि पडिनियत्तई[3] (पडिनियत्त) व 3/1 अक अधम्मं (अधम्म) 2/1 कुणमाणस्स (कुण) वकृ 6/1 अफला (अफल) 1/2 वि अंति[4] (जा) व 3/1 अक राइओ[5] (राइ) 1/2

61. जा (ज) 1/1 सवि वच्चइ (वच्च) व 3/1 अक रयणी (रयणी) 1/1 न (अ)=नहीं सा (ता) 1/1 सवि पडिनियत्तई[3] (पडिनियत्त) व 3/1 अक धम्मं (धम्म) 2/1 च (अ)=ही कुणमाणस्स (कुण) वकृ 6/1 सफला (सफल) 1/2 वि अंति[5] (जा) व 3/1 अक राइओ[5] (राइ) 1/2

---

1. किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा-शब्द काम में लाया जा सकता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण- पृष्ठ 517) मेरे विचार से यह नियम विशेषण शब्दों पर भी लागू किया जा सकता है।
2. कभी-कभी बहुवचन का प्रयोग सम्मान प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है। (हर=मृत्यु का देवता=काल।
3. देखें गाथा 1
4. जा→जांति→जंति (दीर्घ स्वर के आगे संयुक्त अक्षर होने पर दीर्घ स्वर का ह्रस्व स्वर हो जाता है) (हेम-प्राकृत-व्याकरण: 1-84)
5. गाथा 60 देखें
6. दीर्घ का ह्रस्व मात्रा के लिए।

62. जस्सऽत्थि [(जस्स)+(अत्थि)] जस्स (ज) 6/1 स. अत्थि (अ) =है मच्चुणा (मच्चु) 3/1 सक्खं (सक्ख) 1/1 जस्स (ज) 4/1 स चऽत्थि [(च)+(अत्थि)] च (अ)=संभव अर्थ को व्यक्त करता है अत्थि (अ)=है पलायणं (पलायण) 1/1 जो (ज) 1/1 सवि जाणइ (जाण) व 3/1 सक न (अ)=नहीं मरिस्सामि (मर) भवि 1/1 अक सो (त) 1/1 सवि हु (अ)=ही कंखे (कंख) व 3/1 सक सुए→सुवे (अ)=आनेवाला कल सिया (अ)=है

63. सव्वं (सव्व) 1/1 सवि जगं (जग) 1/1 जइ (अ)=यदि तुहं (तुम्ह) 6/1 स वा (अ)=अथवा वि (अ)=भी धणं (धण) 1/1 भवे (भव) विधि 3/1 अक पि (अ)=तो भी ते (तुम्ह) 4/1 स अपज्जत्तं (अपज्जत्त) 1/1 वि नेव (अ)=कभी नहीं ताणाए (ताण) 4/1 तं (त) 1/1 सवि तव (तुम्ह) 6/1 स अनि

64. मरिहिसि (मर) भवि 2/1 अक रायं (रायं) 8/1 अनि जया तया[2] (अ)=किसी भी समय वा (अ)=निस्संदेह मणोरमे (मणोरम) 2/2 वि कामगुणे (कामगुण) 2/2 पहाय (पहा) संकृ एक्को (एक्क) 1/1 वि हु (अ)=ही धम्मो (धम्म) 1/1 नरदेव 8/1 ताणं (ताण) 1/1 न (अ)=नहीं विज्जए (विज्ज) व 3/1 अक अन्नमिहेह [(अन्नं)+(इह)+(इह)] किंचि (अ)=कुछ

65. दवग्गिणा (दवग्गि) 3/1 जहा (अ)=जैसे रण्णे (रण्ण) 7/1 डज्झमाणेसु (डज्झमाण) वकृ कर्म 7/2 अनि जंतुसु (जंतु) 7/2 अनि अन्ने (अन्न) 1/2 सत्ता (सत्त) 1/2 पमोयंति (पमोय) व 3/2 अक रागदोसवसं [(राग)-(दोस)-(वस) 2/1] गया (गय) भूकृ 1/2 अनि

1 'साथ' के योग में तृतीय विभक्ति होती है।

2 जया तया (यदा तदा) = किसी भी समय (Eng Dictionary : Monier williams. P 434 col III)

66. एवमेवं (अ) = बिल्कुल ऐसे ही वयं (अम्ह) 1/2 स मूढा (मूढ) 1/2 वि कामभोगेसु (कामभोग) 7/2 मुच्छिया (मुच्छ) संकृ डज्झमाणं (डज्झमाण) वकृ कर्म 2/1 अनि न (अ) = नहीं बुज्झामो (बुज्झ) व 1/2 सक राग-दोसग्गिणा [(राग) + (दोस) + (अग्गिणा)] [(राग)—(दोस)—(अग्गि) 3/1] जयं (जय) 2/1

67. भोगे (भोग) 2/2 भोच्चा (भोच्चा) सकृ अनि वमित्ता (वम) संकृ य (अ) = और लहुभूयविहारिणो [(लहु)—(भूय)—(विहारि) 1/2 वि] आमोयमाणा (आमोय) वकृ 1/2 गच्छंति (गच्छ) व 3/2 सक दिया (दिय) 1/2 कामकमा [(काम)—(कम)[1]5/1] इव (अ) = जैसे कि

68. लाभालाभे [(लाभ) + (अलाभे)] [(लाभ)—(अलाभ) 7/1] सुहे (सुह) 7/1 दुक्खे (दुक्ख) 7/1 जीविए (जीविअ) 7/1 मरणे (मरण) 7/1 तहा (अ) = तथा समो (सम) 1/1 निंदा-पसंसासु [(निंदा)—(पसंसा) 7/2] तहा (अ) = तथा माणावमाणओ [(माण) + (अवमाणओ)] [(माण)—(अवमाणओ) संस्कृत सप्तमी के द्विवचन का प्राकृतीकरण]

69. जरा-मरणवेगेणं (जरा)-(मरण)—(वेग) 3/1] वुज्झमाणाण (वुज्झ) वकृ कर्म 4/2 अनि पाणिणं[2] (पाणि) 4/2 धम्मो (धम्म) 1/1 दीवो (दीव) 1/1 पइट्ठा (पइट्ठा) 1/1 य (अ) = और गई (गइ) 1/1 सरणमुत्तमं [(सरणं) + (उत्तमं)] सरणं (सरण) 1/1 उत्तमं (उत्तम) 1/1 वि

---

1. किसी कार्य का कारण व्यक्त करने वाली (स्त्रीलिंग भिन्न) संज्ञा में तृतीया या पंचमी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है।
2. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'पाणीणं' को 'पाणिणं' किया गया है।

70. सरीरमाहु [(सरीरं) + (आहु)] सरीरं (सरीर) 2/1 आहु[1] (आहु) भू 3/1 सक अनि नाव (नावा) 2/1 अपभ्रंश त्ति (अ) = चूंकि जीवो (जीव) 1/1 वुच्चइ (वुच्चइ) व कर्म 3/1 सक अनि नाविओ (नाविअ) 1/1 संसारो (संसार) 1/1 अण्णवो (अण्णव) 1/1 वुत्तो (वुत्तो) भूकृ 1/1 अनि जं (ज) 2/1 स तरंति (तर) व 3/2 सक महेसिणो [(मह) + (एसिणो)] [(मह)—(एसि) 1/2 वि]

71. उवलेवो (उवलेव) 1/1 होइ (हो) व 3/1 अक भोगेसु[2] (भोग) 7/2 अभोगी (अभोगि) 1/1 वि नोवलिप्पई [(न) + (उवलिप्पई)] न (अ)=नहीं उवलिप्पई[3] (उवलिप्पइ) व कर्म 3/1 सक अनि भोगी (भोगि) 1/1 वि भमइ (भम) व 3/1 सक संसारे[4] (संसार) 7/1 विप्पमुच्चई (विप्पमुच्चइ) व कर्म 3/1 सक अनि.

72. उल्लो (उल्ल) 1/1 वि सुक्को (सुक्क) 1/1 वि य (अ) = और दो (दो) 1/2 वि छूढा (छूढ) भूकृ 1/2 अनि गोलया (गोलय) 1/2 मट्टियामया [(मट्टिया)-(मय) 1/2 वि] दो (दो) 1/2

---

1. पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 755
2. कभी कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3-135)
3. देखें गाथा 1.
4. कभी कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3-135)

वि (प)=ही आवडिया[1] (आवड) भूकृ 1/2 कुड्डे (कुड्डु) 7/1 जो (ज) 1/1 सवि सोहत्थ [(सो)+(अत्थ)] सो (त) 1/1 सवि अत्थ (अ)=यहां पर लग्गई[2] (लग्ग) व 3/1 अक

73. एवं (अ)=इसी प्रकार लग्गंति (लग्ग) व 3/2 अक दुम्मेहा (दुम्मेह) 1/2 वि जे (ज) 1/2 सवि नरा (नर) 1/2 कामलालसा [(काम)—(लालसा) 1/2 वि] विरत्ता (विरत्त) 1/2 वि उ (अ)=किन्तु न (अ)=नहीं जहा (अ)=जैसे से (त) 1/1 सवि सुक्कगोलए [(सुक्क)-(गोलअ) 1/1]

74. खलुंका (खलुंक) 1/2 जारिसा (जारिस) 1/2 जोज्जा (जोज्जा) 1/2 विधिकृ अनि दुस्सीसा (दुस्सीस) 1/2 वि (अ)= भी हु (अ)=निस्संदेह तारिसा (तारिस) 1/2 वि जोइया (जोअ) भूकृ 1/2 धम्मजाणम्मि [(धम्म) - (जाण) 7/1] भज्जंती[3] (भज्ज) व 3/2 सक धिइदुब्बला [(धिइ)-(दुब्बल) 1/2 वि]

75. समाइएणं (समाइअ) 3/1 भंते (भंत) 8/1 वि जीवे (जीव) 1/1 किं (किं) 2/1 सवि जणयइ (जणयइ) प्रेरक व 3/1 सक अनि सावज्जजोगविरइं [(सावज्ज)-(जोग)-(विरइ) 2/1]

76. पायच्छित्तकरणेणं [(पायच्छित्त)-(करण) 3/1] भंते (भंत) 8/1 वि जीवे (जीव) 1/1 किं (किं) 2/1 वि जणयइ (जणयइ) प्रेरक व 3/1 सक अनि पावकम्मविसोहिं [(पाव) वि-(कम्म)—

1. यहां भूतकालिक कृदन्त का प्रयोग कर्तृवाच्य में हुआ है।
2. यहां वर्तमानकाल का प्रयोग भूतकाल अर्थ में हुआ है।
3. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'ति' को 'ती' किया गया है।

(विसोहि) 2/1] निरइयारे (निरइयार) 1/1 यावि (अ) भवइ (भव) व 3/1 अक सम्मं (अ) =शुद्धिपूर्वक च (अ) = और णं (अ)=वाक्यालंकार पायच्छित्तं (पायच्छित्त) 2/1 पडिवज्जमाणे (पडिवज्ज) वकृ 1/1 मग्गं (मग्ग)2/1 मग्गफलं[(मग्ग)—(फल) 2/1] च (अ) = और विसोहेइ (विसोह) व 3/1 सक आयारं (आयार) 2/1 च (अ)= और आयारफलं [(आयार)—(फल) 2/1] आराहेइ (आराह) व 3/1 सक

77. खमावणयाए (खमावणया) 3/1 णं (अ) = वाक्यालंकार भंते (भंत) 8/1 वि जीवे (जीव) 1/1 किं (किं) 2/1 वि जणयइ (जणयइ) प्रेरक व 3/1 सक अनि पल्हायणभावं [(पल्हायण) वि—(भाव) 2/1] पल्हायणभावमुवगए [(पल्हायण) + (भावं) + (उवगए)] [(पल्हायण)—(भावं) 2/1] उवगए (उवगअ) भूकृ 1/1 अनि य (अ) = और सव्वपाण—भूय—जीव—सत्तेसु [(सव्व)—(पाण)—(भूय)—(जीव)—(सत्त) 7/2] मेत्तीभावं [(मेत्ती)—(भाव) 2/1] उप्पाएइ (उप्पाअ) व 3/1 सक मेत्तीभावमुवगए [(मेत्ती) + (भावं) + उवगए)] [मेत्ती)—(भाव) 2/1] उवगए (उवगअ) भूकृ 1/1 अनि यावि (अ)= और जीवे (जीव) 1/1 भावविसोहिं [(भावं)—(विसोहि) 2/1] काऊण (का) संकृ निब्भए (निब्भअ) 1/1 वि भवइ (भव) व 3/1 अक

78. धम्मकहाए [(धम्म)—(कहा) 3/1] णं (अ) = वाक्यालंकार भंते (भंत) 8/1 वि जीवे (जीव) 1/1 किं (किं) 2/1 वि जणयइ (जणयइ) प्रेरक व 3/1 सक अनि पवयणं (पवयण) 2/1 पभावेइ (पभाव) व 3/1 सक पवयणपभावए [(पवयण)

1. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3-135)

—(पभाव-प्र)1 स्वार्थिक 'य' 7/1] भागमेत्तस्सभद्दत्ताए [(भागमेत्त)+(प्रस्स)+(भद्दत्ताए)] [(भागमेत्त) वि—(प्र-स्स) वि—(भद्दत्त) 4/1] कम्मं (कम्म) 2/1 निबंधइ (निबंध) व 3/1 सक

स्वार्थिक 'य'

79. सुयस्स (सुय) 6/1 आराहणयाए (आराहण→आराहणया) 3/1 स्त्री-लिंग
णं (अ)=वाक्यालंकार भंते (भंत) 8/1 वि जीवे (जीव) 1/1 किं (किं) 2/1 वि जणयइ (जणयइ) प्रेरक व 3/1 सक अनि. अन्नाणं (अन्नाण) 2/1 खवेइ (खव) व 3/1 सक न (अ)=नहीं य (अ)=और संकिलिस्सइ (संकिलिस्स) व 3/1 अक

80. एगग्गमणसन्निवेसणयाए [(एग)+(अग्ग)+(मण)+ 'य' स्वार्थिक
(सन्निवेसणयाए)] [(एग)-(अग्ग)-(मण)-(सन्निवेसण→ स्त्री-लिंग
सन्निवेसणया) 3/1] णं (अ)=वाक्यालंकार भंते (भंत) 8/1 वि जीवे (जीव) 1/1 किं (किं) 2/1 वि जणयइ (जणयइ) प्रेरक व 3/1 सक अनि चित्तनिरोहं [(चित्त)—(निरोह) 2/1] करेइ (कर) व 3/1 सक

81. अपडिबद्धयाए (अपडिबद्धया) 3/1 णं (अ)=वाक्यालंकार भंते (भंत) 8/1 वि जीवे (जीव) 1/1 किं (किं) 2/1 वि जणयइ (जणयइ) प्रेरक व 3/1 सक अनि निस्संगत्तं (निस्संगत्त) 2/1 निस्संगत्तेणं (निस्संगत्त) 3/1 एगे (एग) 1/1 सवि एगग्गचित्ते [(एगग्ग)—(चित्त) 1/1] दिया (अ)=दिन में वा (अ)=

भौर रामो (भ) = रात में भसज्जमाणो (भ-सज्ज) वकृ 1/1 भप्पडिबद्धे (भ-प्पडिबद्ध) भूकृ 1/1 भनि यावि (भ)=भौर विहरइ (विहर) व 3/1 भक

82. वीयरागयाए (वीयरागया) 3/1 णं (भ)=वाक्यालंकार भंते (भंत) 8/1 वि जीवे (जीव) 1/1 किं (किं) 2/1 वि जणयइ (जणयइ) प्रेरक व 3/1 सक भनि नेहाणुबंधणाणि [(नेह) + (भणुबंधणाणि)] [(नेह)—(भणुबंधण)2/2] तण्हाणुबंधणाणि [(तण्हा) + (भणुबंधणाणि)] [(तण्हा)—(भणुबंधण) 2/2] य (भ)=भौर वोच्छिदइ (वोच्छिद) व 3/1 सक मणुन्नेसु[1] (मणुन्न) 7/2 सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधेसु[1] [(सद्द)—(फरिस)—(रस)—रूव —(गंध) 7/2] चेव (भ)=भी विरज्जइ (विरज्ज) व 3/1 भक

83. भज्जवयाए (भज्जवया) 3/1 णं (भ)=वाक्यालंकार भंते (भंत) 3/1 वि जीवे (जीव) 1/1 किं (किं) 2/1 वि जणयइ (जणयइ) प्रेरक व 3/1 सक भनि काउज्जुययं [(काभ) + (उज्जुययं)] [(काभ) — (उज्जुयया) 2/1] भावुज्जुययं [(भाव) + (उज्जुययं)] [(भाव)—(उज्जुयया) 2/1] भासुज्जुययं [(भास) + (उज्जुययं)] [(भास)—(उज्जुयया) 2/1] भविसंवायणं (भ-विसंवायण) 2/1 भविसंवायणसंपन्नयाए [(भविसंवायण)—(संपन्नया) 3/1] धम्मस्स (धम्म) 6/1 भाराहए (भाराहभ) 1/1 वि भवइ (भव) व 3/1 भक

---

1. कभी-कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3–136)

84. जहा (अ)=यदि महातलागस्स[1] [(महा)-(तलाग) 6/1] सन्निरुद्धे (स[2]-न्निरुद्ध) भूकृ 1/1 अनि जलागमे [(जल) + (आगमे)] [(जल) — (आगम) 1/1] उस्सिचणाए (उस्सिचणा) 3/1 तवणाए (तवणा) 3/1 कमेणं (अ)=धीरे-धीरे सोसणा (सोसणा) 1/1 भवे (भव) व 3/1 अक

85. एवं (अ)=इस प्रकार तु (अ)=ही संजयस्सावि [(संजयस्स) + (अवि)] संजयस्स[3] (संजय) 6/1 अवि (अ) = पादपूरक पावकम्मनिरासवे[4] [(पाव)-(कम्म)-(निरासव) 7/1 भवकोडीसंचियं [(भव)— (कोडी) — (संचिय) 1/1 वि] कम्मं (कम्म) 1/1 तवसा (तव) 3/1 निज्जरिज्जई[5] (निज्जर) व कर्म 3/1 सक

86. नाणस्स (नाण) 6/1 सव्वस्स (सव्व) 6/1 पगासणाए
स्त्री
(पगासण→पगासणा) 3/1 अन्नाण-मोहस्स [अन्नाण)-(मोह) 6/1] विवज्जणाए (विवज्जणा) 3/1 रागस्स (राग) 6/1 दोसस्स (दोस) 6/1 य (अ)=और संखएणं (संखअ) 3/1 एगंतसोक्खं [एगंत) वि-(सोक्ख) 2/1] समुवेइ (समुवे) व 3/1 सक मोक्खं (मोक्ख) 2/1

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3-134)
2. स (अ) = पूर्णरूप से
3. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत व्याकरण : 3-134)
4. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत व्याकरण : 3-135)
5. देखे गाथा 1

87. तस्सेस [(तस्स) + (एस)] तस्स (त) 6/1 स. एस (एत) 1/1 सवि मग्गो (मग्ग) 1/1 गुरु-विद्धसेवा [(गुरु)-(विद्ध) वि—(सेवा) 1/1] विवज्जणा (विवज्जणा) 1/1 बालजणस्स [(बाल)-(जण) 6/1] दूरा (अ) = दूर से सज्झायएगंतनिसेवणा [(सज्झाय)-(एगंत)-(निसेवणा) 1/1] य (अ) = और सुत्तत्थसंचिंतणया [(सुत्त) + (अत्थ) + (संचिंतणया)] [(सुत्त)-(अत्थ)-(संचिंतणया) 1/1] धिती (धिति) 1/1 य (अ) = और

88. रागो (राग) 1/1 य[1] (अ) = और दोसो (दोस) 1/1 वि य[1] (अ) = और कम्मबीयं [(कम्म) —(बीय) 1/1] कम्मं (कम्म) 1/1 च (अ) = और मोहप्पभवं [(मोह)-(प्पभवं[2]) 1/1 वि] वयंति (वद) व 3/2 सक कम्मं (कम्म) 1/1 च (अ) = ही जाई-मरणस्स [(जाई[3])-(मरण) 6/1] मूलं (मूल) 1/1 दुक्खं (दुक्ख) 1/1 च (अ) = ही जाई-मरणं [(जाई[3])-(मरण) 1/1] वयंति (वय) व 3/2 सक

89. दुक्खं (दुक्ख) 1/1 हयं (हय) भूकृ 1/1 अनि जस्स (ज) 6/1 स न (अ) = नहीं होइ (हो) व 3/1 अक मोहो (मोह) 1/1 हओ (हअ) भूकृ 1/1 अनि तण्हा (तण्हा) 1/1 हया (हया) भूकृ 1/1 अनि लोहो (लोह) 1/1 किंचणाइं (किंचण) 1/2

---

1. वाक्यांश को जोड़ने के लिए 'और' सूचक अव्ययों का प्रयोग दो बार कर दिया जाता है।

2. जब 'प्पभव' का प्रयोग समास के अन्त में किया जाता है तो इसका अर्थ होता है, 'उत्पन्न' (वि)

3. समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ और दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व प्रायः हो जाते हैं। (हेम प्राकृत व्याकरण : 1-4) जाइ→जाई

90 विवित्तसेज्जासणजंतियाणं [(विवित्त) + (सेज्जा) + (आसण) +(जंतियाणं)] [(विवित्त)-(सेज्जा)-(आसण)-(जंतिय) 6/2 वि] ओमासणाणं [(ओम) + (असणाणं)] ओमासणाणं (ओमासण) 6/2 वि दमिइंदियाणं [(दमिअ)+(इंदियाणं)] दमिइंदियाणं (दमिइंदिय) 6/2 वि न (अ)=नहीं रागसत्तू [(राग)-(सत्तु) 1/1] धरिसेइ (धरिस) व 3/1 सक चित्तं (चित्त) 2/1 पराइओ (पराइअ) भूकृ 1/1 अनि वाहिरिवोसहेहिं [(वाहि) +(रिउ) + (व) + (ओसहेहि)] [(वाहि)-(रिउ)-(व) अ=जैसे-(ओसह) 3/2]

91. कामाणुगिद्धिप्पभवं [(काम) + (अणुगिद्धि) + (प्पभवं)] [(काम)-(अणुगिद्धि)-(प्पभव)[1] 1/1 वि] खु (अ)=ही दुक्खं (दुक्ख) 1/1 सव्वस्स (सव्व) 6/1 वि लोगस्स (लोग) 6/1 सदेवगस्स (सदेवग) 6/1 वि जं (ज) 1/1 सवि काइयं (काइय) 1/1 वि माणसियं (माणसिय) 1/1 वि च (अ)=भी किंचि (अ)=कुछ तस्संतगं [(तस्स) + (अतगं)] तस्स (त) 6/1 स अंतगं[2] 2/1 गच्छइ (गच्छ) व 3/1 सक वीयरागो (वीयराग) 1/1 वि

92. जहा (अ)=जैसे य (अ)=पादपूरक किंपागफला [(किंपाग)-(फल) 1/2] मणोरमा (मणोरम) 1/2 वि रसेण[3] (रस) 3/1 वण्णेण[3](वण्ण) 3/1 य (अ)=और

---

1. जब 'प्पभव' का प्रयोग समास के अन्त में किया जाता है, तो इसका अर्थ होता है, 'उत्पन्न' (वि).
2. 'गति' अर्थ की क्रिया के साथ द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया जाता है।
3. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3-137)।

भुञ्जमाणा (भुञ्जमाण) वकृ कर्म 1/2 अनि ते (त) 1/2 सवि खुद्दएं (खुद्दअ)। स्वार्थिक 'अ' 7/1 वि जीविए[1] (जीविअ) 7/1 पच्चमाणा (पच्चमाण) वकृ कर्म 1/2 अनि एओवमा [(एअ) + (उवमा)] [(एअ) - (उवमा) 1/1] कामगुणा [(काम)-(गुण) 1/2] विवागे (विवाग) 7/1

93. चक्खुस्स[2] (चक्खु) 6/1 रूवं (रूव) 1/1 गहणं (गहण) 1/1 वयंति[3] (वय) व 3/2 सक तं (अ)=वाक्य की शोभा रागहेउं [(राग)—(हेउ) 2/1] तु (अ) = पादपूरक मणुन्नमाहु [(मणुन्नं) + (आहु)] मणुन्नं (मणुन्न) 2/1 वि आहु (आहु)] भू 3/2 सक अनि तं (अ)=वाक्य की शोभा दोसहेउं [(दोस)-(हेउ) 2/1] अमणुन्नमाहु [(अमणुन्नं) + (आहु)] अमणुन्नं (अमणुन्न) 2/1 आहु[4] (आहु)भू 3/2 सक अनि समो(सम) 1/1 वि उ (अ)=किन्तु जो (ज) 1/1 सवि तेसु (त) 7/2 स स (त) 1/1 सवि वीयरागो (वीयराग) 1/1 वि

94. रूवेसु (रूव) 7/2 जो (ज) 1/1 सवि गेहिमुवेइ [(गेहिं) + (उवेइ)] गेहिं (गेहि) 2/1 उवेइ (उवे) व 3/1 सक तिव्वं (तिव्वं) 2/1 वि अकालियं (अकालिय) 2/1 वि पावइ (पाव) व 3/1 सक से (त) 1/1 सवि विणासं (विणास) 2/1 रागाउरे [(राग) + (आउरे)] [(राग)—(आउर) 1/1 वि] जह (अ) =जैसे वा (अ)=तथा पयंगे(पयंग) 1/1 आलोगलोले [(आलोग)

1. कभी कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135)
2. कभी कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135)
3. यहाँ वर्तमान काल का प्रयोग भूतकाल अर्थ में हुआ है।
4. पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 755

—(लोल) 1/1 वि] समुवेइ (समुवे) व 3/1 सक मच्चुं (मच्चु) 2/1

95. भावे[1] (भाव) 7/1 विरत्तो (विरत्त) 1/1 वि मणुओ (मणुअ) 1/1 विसोगो (विसोग) 1/1 वि एएण (एअ) 3/1 सवि दुक्खोघपरंपरेण [(दुक्ख)+(ओघ)+(परंपरेण)] [(दुक्ख)-(ओघ)-(परंपर) 3/1] न (अ)=नहीं लिप्पई[2] (लिप्पइ) व कर्म 3/1 सक अनि भवमज्झे [(भव)-(मज्झ) 7/1] वि (अ)=भी संतो (संत) 1/1 वि जलेण (जल) 3/1 वा (अ)=जैसे कि पुक्खरिणीपलासं [(पुक्खरिणी)-(पलास) 1/1]

96. एविंदियत्था [(एव)+(इंदिय)+(अत्था)] एव (अ)=वास्तव में [(इन्दिय)-(अत्थ) 1/2] य (अ)=और मणस्स (मण) 6/1 अत्था (अत्थ) 1/2 दुक्खस्स (दुक्ख) 6/1 हेउं (हेउ) 1/1 मणुयस्स (मणुय) 4/1 रागिणो (रागि) 4/1 ते (त) 1/2 सवि चेव (अ)=भी थोवं (थोव) 2/1 वि पि (अ)=भी कयाइ (अ)=कभी दुक्खं (दुक्ख) 2/1 न (अ)=नहीं वीयरागस्स (वीयराग) 4/1 करेंति (कर) व 3/2 सक किंचि (अ)=कुछ.

97. न (अ)=नहीं कामभोगा [(काम)-(भोग)[3] 5/1] समयं (समय) 2/1 उवेंति (उवे) व 3/2 सक यावि (अ)=और भोगा (भोग[3]) 5/1 विगइं (विगइ) 2/1 जे (ज) 1/1 सवि तप्पदोसी [(त)—

---

1. कभी कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-136)
2. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।
3. किसी कार्य का कारण व्यक्त करने के लिए संज्ञा को तृतीया या पंचमी में रखा जाता है।

(प्पदोसि) 1/1 वि] य[1] (अ)=और परिग्गहो (परिग्गहि) 1/1 वि य (अ)=और सो (त) 1/1 सवि तेसु (त) 7/2 स मोहा (मोह) 5/1 उवेति (उवे) व 3/1 सक

98. विरज्जमाणस्स (विरज्ज) वकृ 4/1 य (अ)=और इंदियत्था [(इन्दिय)+(अत्था)] [(इन्दिय)—(अत्थ) 1/2] सद्दाइया [(सद्द)+(आइया)] [(सद्द)-(आइय) 1/2 स्वार्थिक 'य'] तावइयप्पयारा [(तावइय) वि-(प्पयार) 1/2] न (अ)=नहीं तस्स (त) 4/1 स सव्वे (सव्व) 1/2 वि वि (अ)=ही मणुन्नयं (मणुन्नया) 2/1 वा (अ)=या निव्वत्तयंती[2] (निव्वत्तयंती) व 3/2 सक अनि अमणुन्नयं (अमणुन्नया) 2/1 वा (अ)=या.

99. सिद्धाणं (सिद्ध) 4/2 नमो[3] (अ)=नमस्कार किच्चा (किच्चा) संकृ अनि संजयाणं (संजय) 4/2 वि च (अ)=और भावओ (भाव) पंचमी अर्थक 'ओ' प्रत्यय अत्थधम्मगइं [(अत्थ)-(धम्म)-(गइ) 2/1] तच्चं (तच्च-स्त्री → तच्चा) 2/1 वि अणुसट्ठिं (अणुसट्ठि) 2/1 सुणेह (सुण) विधि 2/2 सक मे(अम्ह) 3/1स

100. पभूयरयणो(पभूयरयण) 1/1 वि राया (राय) 1/1 सेणिओ(सेणिअ) 1/1 मगहाहिवो [(मगह)+(अहिवो)] [(मगह)—(अहिव)

1. वाक्यांश को जोड़ने के लिए 'और' सूचक अव्ययों का प्रयोग दो बार कर दिया जाता है।
2. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'ति' को 'ती' किया गया है।
3. 'नमो' के योग में चतुर्थी होती है।

1/1] विहारजत्तं (विहारजत्त) 2/1 निज्जाओ[1] (निज्जाअ) भूकृ 1/1 अनि मंडिकुच्छिसि[2] (मण्डिकुच्छ) 7/1 चेइए (चेइ[2]अ) 7/1.

101. णाणादुमलयाइण्णं[3] [(नाणा)-(दुम)-(लया)-(इण्ण) भूकृ 1/1 अनि] नाणापक्खिनिसेवियं [(नाणा)-(पक्खि)-(निसेविय) भूकृ 1/1 अनि] नाणाकुसुमसंछन्नं [(नाणा)-(कुसुम)-(सं-छन्न) भूकृ 1/1 अनि] उज्जाणं (उज्जाण) 1/1 नंदणोवमं[4] (नन्दण) + (उवमं)] [नन्दण)-(उवम) 1/1 वि]

102. तत्थ (अ)=वहां सो (त) 1/1 सवि पासई[5] (पास) व 3/1 सक साहुं (साहु) 2/1 संजयं (संजय) भूकृ 2/1 अनि सुसमाहियं (सु-समाहिय) भूकृ 1/1 अनि निसन्नं (निसन्न) भूकृ 1/1 अनि रुक्खमूलम्मि [(रुक्ख)-(मूल) 7/1] सुकुमालं (सुकुमाल) 2/1 वि. सुहोइयं [(सुह) + (उइय)] [(सुह)-(उइय) भूकृ 2/1 अनि]

103. तस्स (त) 6/1 स रूवं (रूव) 2/1 तु (अ)=और पासित्ता (पास) संकृ राइणो (राय) 6/1 तम्मि (त) 7/1 स अच्चंतपरमो [(अच्चंत) वि-(परम) 1/1 वि] आसी (अस) भू 3/1 अतुलो (अतुल) 1/1 वि रूवविम्हओ [(रूव)-(विम्हअ) 1/1]

---

1. 'गमन' अर्थ में भूतकालिक कृदन्त कर्तृवाच्य में प्रयुक्त हुआ है।
2. कभी-कभी सप्तमी का प्रयोग द्वितीया के स्थान पर पाया जाता है (हेम-प्राकृत व्याकरण : 3-135)।
3. समास के प्रारम्भ में विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है (आप्टे : संस्कृत हिन्दी-कोश)
4. समास के अन्त में इसका अर्थ होता है 'के समान' (आप्टे : संस्कृत हिन्दी कोश)।
5. छन्द की मात्रा के लिए 'इ' को 'ई' किया गया है।
वर्तमान का प्रयोग भूतकाल अर्थ में हुआ है।

104. अहो (अ)=आश्चर्य वण्णो (वण्ण) 1/1 रूवं (रूव) 1/1 अज्जस्स (अज्ज) 6/1 सोमया (सोमया) 1/1 खंती (खंति) 1/1 मुत्ती (मुत्ति) 1/1 भोगे (भोग) 7/1 असंगया (असंगया) 1/1

105. तस्स (त) 6/1 स पाए (पाअ) 7/1 उ (अ)=और वंदित्ता (वंद) संकृ काऊण (काऊण) संकृ अनि य (अ)=तथा पयाहिणं (पयाहिणा) 2/1 नाइदूरमणासन्ने [(नाइदूरं)+(अणासन्ने)] नाइदूरं (अ) =न अत्यधिक दूरी पर अणासन्ने (अणासन्न) 7/1 पंजली (पंजलि) 1/1 वि पडिपुच्छई[1] (पडिपुच्छ) व 3/1 सक.

106. तरुणो (तरुण) 1/1 सि (अस) व 2/1 अक अज्जो (अज्ज) 8/1] पव्वइओ (पव्वइअ) भूकृ 1/1 अनि भोगकालम्मि [(भोग) -(काल) 7/1] संजया (संजय) 8/1 उवट्ठिओ (उवट्ठिअ) भूकृ 1/1 अनि सामण्णे (सामण्ण) 7/1 एयमट्ठं [(एय)+(अट्ठं)] एयं (एय) 2/1 सवि अट्ठ (अट्ठ) 2/1 सुणेमु (सुण) व 1/1 सक ता (अ)=तो

107. अणाहो (अणाह) 1/1 वि मि (अस) व 1/1 अक महारायं (महाराय) 8/1 नाहो (नाह) 1/1 वि मज्झ (अम्ह) 6/1 स न (अ)=नहीं विज्जई (विज्ज) व 3/1 अक अणुकंपगं (अणुकंपग) 1/1 वि सुहिं (सुहि) 2/1 वा (अ)=या वि (अ) =भी कंची[2] (क) 2/1 नाभिसमेमऽहं [(न)+(अभिसमेम)+(अहं)] न (अ)=नहीं अभिसमेम (अभिसमे) व 1/2 सक अहं (अम्ह) 1/1 स

---

1. पूरी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियाओं में बहुधा 'ई' हो जाता है (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 138)

2. किम्+चित्=कंचित्(2/1)=कंचि=कंची (मात्रा के लिए दीर्घ)

108. तश्रो (अ) = तत्र सो (त) 1/1 सवि पहसिओ (पहस) भूकृ 1/1 राया (राय) 1/1 सेणिओ (सेणिअ) 1/1 मगहाहिवो [(मगह) + (अहिवो)] [(मगह) - (अहिव) 1/1] एवं = एव (अ) = जैसे ते (तुम्ह) 4/1 स इड्ढिमंतस्स (इड्ढिमंत) 4/1 वि कहं (अ) = कैसे नाहो (नाह) 1/1 न (अ) = नहीं विज्जई (विज्ज) व 3/1 अक.

109. होमि (हो) व 1/1 अक नाहो (नाह) 1/1 भयंताणं (भयत) 4/2 वि भोगे (भोग) 2/2 भुंजाहि (भुंज) विधि 2/1 सक संजया (संजया) 8/1 मित्त-नाईपरिवुडो [(मित्त) - (नाई)[2] - (परिवुड) भूकृ 1/1 अनि] माणुस्सं (माणुस्स) 1/1 खु (अ) = सचमुच सुदुल्लह [(सु-(दुल्लह) 1/1 वि]

110. अप्पणा (अ) = स्वयं वि (अ) = ही अणाहो (अणाह) 1/1 सि (अस) व 2/1 अक सेणिया (सेणिअ) 8/1 मगहाहिवा [(मगह) + (अहिवा)] [(मगह) (अहिव) 8/1] संतो[3] (संत) वकृ 1/1 अनि कस्स (क) 6/1 नाहो (नाह) 1/1 भविस्सामि (भव 2/1 अक

111. एवं (अ) इस प्रकार वुत्तो (वुत्त) भूकृ 1/1 अनि नरिंदो (नरिंद) 1/1 सो (त) 1/1 सवि सुसंभंतो [(सु) (अ) - (संभत) भूकृ 1/1 अनि] सुविम्हिओ [(सु) (अ) — (विम्हिअ) भूकृ 1/1 अनि] वयणं

1. अनुस्वार का आगम (हेम-प्राकृत-व्याकरण, 1-26)।
2. समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर परस्पर में दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व हो जाया करते हैं (हेम-प्राकृत व्याकरण : 1-4)।
3. (अस् वकृ → सत् → स → संत → संतो)।

(वयण) 2/1 असुयपुव्वं (असुयपुव्व) 2/1 वि साहुणा (साहु) 3/1 विम्हयान्नितो [(विम्हय) + (अन्नितो)] [(विम्हय—(अन्नित) भूकृ 1/1 अनि]

112. अस्सा (अस्स) 1/2 हत्थी (हत्थि) 1/2 मणुस्सा (मणुस्स) 1/2 मे (अम्ह) 6/1 स पुरं (पुर) 1/1 अंतेउरं (अंतेउर) 1/1 च (अ)=और जामि (भुंज) व 1/1 सक (माणुसे) (माणुस) 2/2 वि भोए (भोअ) 2/2 आणा (आणा) 1/1 इस्सरियं (इस्सरिअ) 1/1

113. एरिसे (एरिस) 7/1 वि संपयग्गम्मि [(संपया) + (अग्गम्मि)] [(संपया)—(अग्ग) 7/1] सव्वकामसमप्पिए [(सव्व)—(काम)—(समप्प) भूकृ 1/1] कहं (अ)=कैसे अणाहो (अणाह) 1/1 भवई (भव) व 3/1 अक मा (अ)=मत हु (अ)=पादपूरक भंते (भंत) 3/1 वि मुसं (मुसा) 2/1 वए (व अ) 7/1

114. न (अ)=नहीं तुमं (तुम्ह) 1/1 स जाणे[1] (जाण) व 1/1 सक अणाहस्स (अणाह) 6/1 अत्थं (अत्थ) 2/1 पोत्थं (पोत्थ) 2/1 च (अ)=और पत्थिवा (पत्थिव) 8/1 जहा (अ)=जैसे अणाहो (अणाह) 1/1 भवइ (भव) व 3/1 अक सणाहो (सणाह) 1/1 वा (अ)=या नराहिवा (नराहिव) 8/1

115. सुणेह[2] (सुण) विधि 2/2 सक मे (अम्ह) 3/1 स महारायं[3] (महाराय) 3/1 अव्वक्खित्तेण (अव्वक्खित्त) 3/1 वि चेयसा

1. पिशल, प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 676.
2. आदर सूचक में बहुवचन होता है।
3. अनुस्वार का आगम हुआ है (हेम-प्राकृत व्याकरण, 1-26)।

(चेय) 3/1 जहा (अ)=जैसे अरणाहो (अरणाह) 1/1 भवति (भव) व 3/1 अक मे (अम्ह) 3/1 स य (अ)=पादपूरक पवत्तिरं (पवत्तिय) भूकृ 1/1 अनि

116. कोसंबी (कोसंबी) 1/1 नाम (अ)=नामक नयरी (नयरी) 1/1 पुराणपुरभेयणी [(पुराण)-(पुर)-(भेयण स्त्री→भेयणी) 1/1] तत्थ (अ)=वहां आसी (अस) भू 3/1 अक पिया (पिउ) 1/1 मज्झं (अम्ह) 6/1 स पभूयधणसंचओ [(पभूय) वि-(धण)-(संचअ) 1/1]

117. पढमे (पढम) 7/1 वि वए (वअ) 7/1 महाराय[1] (महाराय) 8/1 अतुला (अतुल स्त्री→अतुला) 1/1 वि मे (अम्ह) 6/1 स अच्छिवेयणा [(अच्छि)—(वेयणा) 1/1] अहोत्था (अहोत्थ स्त्री→अहोत्था) 1/1 वि विउलो (विउल) 1/1 वि दाहो (दाह) 1/1 सव्वगत्तेसु [(सव्व) वि—(गत्त) 7/2] पत्थिवा (पत्थिव) 8/1

118. सत्थं (सत्थ) 2/1 जहा (अ)=जैसे परमतिक्खं [(परम) वि—(तिक्ख) 2/1 वि] सरीरवियरंतरे [(सरीर) + (वियर) + (अन्तरे)] [(सरीर)-(वियर)-(अन्तर) 7/1] पविसेज्ज[1] (पविस) व 3/1 सक (यहां पाठ होना चाहिए पवेसेज्ज (पविस प्रे—पवेस) व प्रे 3/1 सक) अरी (अरि) 1/1 कुद्धो (कुद्ध) 1/1 वि एवं (अ)=उसी प्रकार मे (अम्ह) 6/1 स अच्छिवेयणा [(अच्छि)-(वेयणा) 1/1]

1. अनुस्वार का आगम हुआ है (प्राकृत व्याकरण, 1-26)।

119. तियं[1] (तियं) 1/1 मे (अम्ह) 6/1 स अंतरिच्छं[2] (अंतरिच्छ) 2/1 च (य)=और उत्तमंगं[3] (उत्तमंग) 2/1 च (य)=तथा पीडई[4] (पीड) व 3/1 सक इंदासणिसमा [(इंद)+(असणि)+(समा)] [(इंद)-(असणि)-(सम स्त्री→समा) 1/1 वि] घोरा (घोर—घोरा) 1/1 वि वेयणा (वेयणा) 1/1 परमदारुणा [(परम) वि—दारुण→दारुणा) 1/1 वि]

120. उवट्ठिया (उवट्ठिय) भूकृ 1/2 अनि मे (अम्ह) 6/1 स आयरिया (आयरिया) 1/2 विज्जामंतचिगिच्छगा [(विज्जा)-(मंत)-(चिगिच्छग) 1/2] अबीया (अ-बीय) 1/2 वि सत्थकुसला [(सत्थ)—(कुसल) 1/2 वि] मंत-मूलविसारया [(मंत)-(मूल)-(विसारय) 1/2 वि]

121. ते (स) 1/2 स मे (अम्ह) 6/1 स तिगिच्छं (तिगिच्छा) 2/1 कुव्वंति (कुव्व) व 3/2 सक चाउप्पायं (चाउप्पाय) 2/1 वि जहाहियं (जहाहिय) 2/1 वि न नहीं य (अ)=किन्तु दुक्खा (दुक्ख) 5/1 विमोयंति (विमोय) व 3/2 सक एसा (एत) 1/1 सवि मज्झ (अम्ह) 6/1 अणाहया (अणाहया) 1/1.

1. तिय (त्रिक)=कमर [Monier Williams: Sans. Eng Dict.]
2. 'आकाश और पृथ्वी के बीच का मध्यवर्ती प्रदेश (कटि और मस्तिष्क के बीच का हिस्सा)
3. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण, 3-137)।
4. पूरी या आधी के गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियाओं में बहुधा 'ई' हो जाता है (पिशल प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 138)।

122. पिया (पिउ) 1/1 मे (अम्ह) 6/1 स सव्वसारं [(सव्व) वि-(सार) 2/1] वि (अ)=भी देज्जाहि[1] (दा) विधि 2/1 सक मम (अम्ह) 6/1 स कारणा (कारण) 5/1 शेष के लिए देखें 121।

123. माया (माया) 1/1 वि (अ)=भी मे (अम्ह) 6/1 स महाराय (महाराय) 8/1. पुत्तसोगदुहऽट्टिया [(पुत्त)-(सोग)-(दुह) अट्टिया) 1/1 वि] शेष के लिए देखें 121.

124. भायरो (भायर) 1/1 मे (अम्ह) 6/1 स महाराय (महाराय) 8/1 सगा[2] (सग) 1/2 जेट्ठ-कणिट्ठगा [(जेट्ठ)-(कणिट्ठग) 1/2 वि 'ग' स्वार्थिक] शेष के लिए देखें 121.

125. भइणीओ (भाइणी) 1/2 मे (अम्ह) 6/1 स महाराय (महाराय) 8/1 सगा (सग) 1/2 वि जेट्ठ-कणिट्ठगा [(जेट्ठ-(कणिट्ठग) 1/2 वि 'ग' स्वार्थिक] शेष के लिए देखें 121।

126. भारिया (भारिया) 1/1 मे (अम्ह) 6/1 स महाराय (महाराय) 8/1 अणुरत्ता (अणुरत्त →स्त्री अणुरत्ता) 1/1 वि अणुव्वया (अणुव्वया) 1/1 अंसुपुण्णेहि [(अंसु)-(पुण्ण) भूकृ 3/2 अनि] नयणेहि (नयण) 3/2 उरं (उर) 2/1 [illegible] परिसिंचई[3] (परिसिंच) व 3/1 स[illegible]

1. (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3-178)
2. सगा (स्वका)=मित्र या परिवार के लोग (Mon[illegible] English Dictionary)
3. पूरी गाथा के अन्त में आने वाला 'इ' का क्रियार्थी[illegible] (पिशल प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 138)

127. अन्नं (अन्न) 2/1 पाणं (पाण) 2/1 च (अ)=और ण्हाणं (ण्हाण) 2/1 गंध-मल्लविलेवणं [(गंध)-(मल्ल)-(विलेवण) 2/1 मए (अम्ह) 3/1 स णायमणायं [(णायं)+(अणायं)] णायं (णाय भूकृ 1/1 अनि अणायं (अणाय) भूकृ 1/1 अनि वा (अ)=अथवा सा (ता) 1/1 सवि बाला (बाला) 1/1 नोवभुंजई [(न)+(उवभुंजई)] न (अ)=उवभुंजई[1] (उवभुंज) व 3/1

128. खणं (अ)=एक क्षण के लिए पि (अ)=भी मे (अम्ह) 6/1 स महाराय (महाराय) 8/1 पासाओ (पास) 5/1 वि (अ)=ही न (अ)=नहीं फिट्टई[5] (फिट्ट) व 3/1 अक य (अ)=फिर भी दुक्खा (दुक्ख) 5/1 विमोएइ (विमोअ) व 3/1 सक एसा (एता) 1/1 सवि मज्झ (अम्ह) 6/1 स अणाहया (अणाहया) 1/1

129. तओ (अ)=तब हं (अम्ह) 1/1 स एवमाहंसु [(एवं)+(आहंसु)] एवं (अ)=इस प्रकार आहंसु[2] (आह) भू 1/1 सक दुक्खमा (दुक्खमा) 1/1 वि हु (अ)=निश्चय ही पुणो पुणो (अ)=बार बार वेयणा (वेयणा) 1/1 अणुभविउं (अणुभव) संकृ जे (अ)=पादपूर्ति संसारम्मि ( ) संसार 7/1 अणन्तए (अणंतअ) 7/1 वि

130. सइं (अ)=तुरन्त च (अ)=ही जइ यदि मुच्चिज्जा (मुच्चिज्जा) विधि कर्म 1/1 सक अनि वेयणा (वेयणा) 5/1 विउला (विउल) 5/1 वि इओ (अ)= इससे खंतो (खंत) 1/1 वि दंतो (दंत) 1/1 वि निरारंभो (निरारंभ) 1/1 वि पव्वए (पव्वअ) 7/1 अणगारियं[3] (अणगारिय) 2/1 वि

---

1. देखें गाथा 126
2. (पिशलः प्राकृत भाषाओं का व्याकरण- पृष्ठ 157)
3. कभी कभी सप्तमी के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत व्याकरणः 3-137)

131. एवं (अ)=इस प्रकार च (अ)=ही चिंतइत्ताणं (चिंत) संकृ पासुत्तो (पासुत्त) भूकृ 1/1 अनि मि (अस) व 1/1 अक नराहिवा (नराहिव) 8/1 परियत्तंतीए (परियत्त+-वकृ परियत्तंत+-स्त्री परियत्तंती) वकृ 7/1 राईए (राइ) 7/1 वेयणा (वेयणा) 1/1 मे (अम्ह) 6/1 स खयं (खय) 2/1 गया (गय→ गया) भूकृ 1/1 अनि

132. तओ (अ)=तब कल्ले (कल्ल) 1/1 वि पभायम्मि (पभाय) 7/1 आपुच्छित्ताण (आपुच्छ) संकृ बंधवे (बंधवे) 2/2 खंतो (खंत) 1/1 वि दंतो (दंत) 1/1 वि निरारंभो (निरारंभ) 1/1 वि पव्वइओ (पव्वइअ) भूकृ 1/1 अनि अणगारियं[1] (अणगारिय) 2/1 वि

133. तो (अ)=इसलिए हं (अम्ह) 1/1 स नाहो (नाह) 1/1 जाओ (जाअ) भूकृ 1/1 अनि अप्पणो (अप्प) 6/1 वि य (अ) और परस्स (पर) 6/1 वि य (अ)=भी सव्वेसिं (सव्व) 6/2 वि चेव (अ)=ही भूयाणं (भूय) 6/1 तसाणं (तस) 6/2 थावराण (थावर) 6/2 य (अ)=और

134. अप्पा 1/1 नदी (नदी) 1/1 वेयरणी (वेयरणी) मे (अम्ह) 4/1 स कूडसामली (कूडसामलि) 1/1 कामदुहा (कामदुहा) 1/1 वि धेणू (धेणु) 1/1 नंदणं (नंदण) 1/1 वणं (वण) 1/1

---

1. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)

135. अप्पा (अप्प) 1/1 कत्ता (कत्तु) 1/1 वि विकत्ता (विकत्तु) 1/1 वि य (अ)=भी दुक्खाण (दुक्ख) 6/2 य (अ) -और सुहाण (सुह) 6/2 य (अ)=तथा मित्तममित्तं [(मित्तं) : (अमित्तं)] मित्तं (मित्त) 1/1 अमित्तं (अमित्त) 1/1 च (अ) और दुप्पट्ठियसुप्पट्ठिओ [(दुप्पट्ठिय)-(सुप्पट्ठिअ) 1/1 वि)]

136. इमा (इमा) 1/1 सवि हु (अ)=भी अन्ना (अन्न) 1/1 वि वि (अ)=ही अणाहया (अणाहया) 1/1 निवा (निवा) 8/1 तमेगचित्तो [(तं)+(एग)+चित्तो) तं (त) 2/1 [(एग)-(चित्त)] 1/1 निहुओ (निहुअ) 1/1 वि सुणेहि (सुण) विधि 2/1 सक मे (अम्ह) 3/1 स नियंठधम्मं (नियंठधम्म, 2/1 लभियाण (लभ) संकृ वी (अ)=भी जहा (अ)=चूंकि सीयंति (सीय) व 3/2 अक एगे (एग) 1/2 सवि बहुकायरा [(बहु)-(कायर) 1/2 वि] नरा (नर) 1/2

137. जे (ज) 1/1 सवि पव्वइत्ताणं (पव्वअ) संकृ महव्वयाइं (महव्वय) 2/2 सम्मं (अ)=उचितरूप से नो (अ)=नहीं फासयती[1] (फासयती) व 3/1 सक अनि पमाया[2] (पमाय) 5/1 अनिग्गहप्पा [(अनिग्गह)+(अप्पा)] [(अनिग्गह-(अप्प) 1/1] य (अ)=और रसेसु (रस) 7/2 गिद्धे (गिद्ध) भूकृ 1/1 अनि न (अ)=नहीं मूलओ (मूल) पंचमी अर्थक 'ओ' प्रत्यय छिंदइ (छिंद) व 3/1 सक बंधणं (बंधण) 2/1 से (त) 1/1 सवि

1. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु दीर्घ किया गया है।

2. किसी कार्य का कारण व्यक्त करने के लिए संज्ञा को तृतीया या पंचमी में रखा जाता है।

138. आउत्तया (आउत्तया) 1/1 जस्स (ज) 6/1 स य (अ) ··· भी नत्थि (अ)=नहीं काई [1] (का) 1/1 सवि इरियाए (इरिया) 7/1 भासाए (भासा) 7/1 तहेसणाए तहेसणाए [(तह)+((एसणाए)] तह (अ)=तथा एसणाए (एसणा) 7/1 आयाण-निक्खेव [(आयाण)-(निक्खेव) मूलशब्द 7/1] दुगुंछणाए (दुगुंछणा) 7/1 न (अ)=नहीं वीरजायं [(वीर)-(जाय) भूकृ 2/1 अनि] अणुजाइ (अणुजा) व 3/1 सक मग्गं (मग्ग) 2/1

139. चिरं (क्रविअ)=दीर्घ काल तक पि (अ)=से (त) 1/1 सवि. मुंडरूई [(मुंड)-(रूइ)[2] 1/1 वि] भविता (भव) संकृ अथिरव्वए [(अथिर) वि-(व्वअ) 7/1] तव-नियमेहिं [3] [(तव)-(नियम) 3/2] भट्टे (भट्ट) भूकृ 1/1 अनि अप्पाणं (अप्पाण) मूल शब्द 2/1 किलेसइत्ता (किलेस) संकृ न (अ)=नहीं पारए (पारअ) 1/1 वि होइ (हो) व 3/1 अक हु (अ)=पादपूरक संपराए (संपराअ) 7/1

140. पोल्लेव [(पोल्ल)+(एव)] पोल्ल (पोल्ल) मूल शब्द 1/1 वि मुट्ठी (मुट्ठि) 1/1 जह (अ)=की तरह से (त) 1/1 सवि असारे (असार) 1/1 वि अयंतीए (अयंतीअ) 1/1 वि कूडकहावणे [(कूड)-(कहावण) 1/1] वा (अ)=की तरह राढामणी

---

1. कभी कभी 'ई' दीर्घ कर दिया जाता है।
2. समास के अन्त में इसका अर्थ होता है 'संलग्न' (आप्टे : संस्कृत हिन्दी कोश)।
3. कभी-कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3-136)

(राढामरिण) 1/1 बेरुलियप्पकासे [(वेरुलिय)-(प्पगास) 1/1 वि] अमहग्घए (अ-महग्घअ) 1/1 वि स्वार्थिक 'अ' होइ (हो) 3/1 अक हु (अ)= पादपूरक जाणएसु (जाणअ) 7/2

141. कुसीललिंगं [(कुसील)-(लिंग) 2/1 इह (अ)=इस लोक में धारइत्ता (धार) संकृ इसिज्झयं [(इसि)-(ज्झय) 2/1 जीविय (जीविय) मूल शब्द 2/1 विहइत्ता=विहइत्ता (विह) संकृ असंजए[1] असंजय) भूकृ 7/1 अनि संजय (संजय) मूल शब्द भूकृ 2/1 अनि लप्पमाणे (लप्प) वकृ 1/1 विणिघायमागच्छइ [(विणिघायं+(आगच्छइ)] विणिघायं (विणिघाय) 2/1 आगच्छइ (आगच्छ) व 3/1 सक से (त) 1/1 सवि चिरं (अ) =दीर्घ काल तक पि (अ)=भी

142. विसं (विस) 1/1 तु (अ)=और पीयं (पीय) भूकृ 1/1 अनि जह (अ)=जैसे कि कालकूड (कालकूड) 1/1 हणाइ[2] (हण) व 3/1 सक सत्थं (सत्थ) 1/1 जह (अ)=जैसे कि कुग्गहीयं (कुग्गहीय) भूकृ 1/1 एसेव [(एस)+(एव)] एस (एत) 1/1 सवि एव (अ)=वैसे ही धम्मो (धम्म) 1/1 विसओववन्नो [(विसअ)+(उववन्नो)] [(विसअ)-(उववन्न) भूकृ 1/1 अनि] वेयाल (वेयाल) मूल शब्द 1/1 इवाविवन्नो [(इव)+(अविवन्नो) इव (अ)=जैसे कि अविवन्नो (अ-विवन्न) भूकृ 1/1 अनि

---

1. कभी कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3-135)
2. कभी कभी अकारान्त धातु के अन्त्यस्थ 'अ' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति पाई जाती है (हेम-प्राकृत-व्याकरण, 3-158)।

143. जे (अ) 1/1 सवि लक्खणं (लक्खण) 2/1 सुविणं (सुविण) 2/1 पउंजमाणे (पउंज) वकृ 1/1 निमित्त-कोऊहलसंपगाढे [(निमित्त-(कोउहल)-(संपगाढ) 1/1 वि] कुहेडविज्जासवदार जीवी [(कुहेड)+(विज्जा)+(आसव)+(दार)+(जीवी)] [(कुहेड-(विज्जा)-(आसव-(दार)-(जीवि) 1/1 वि] न (अ)= नहीं गच्छई[1] (गच्छ) व 3/1 सक सरणं (सरण) 2/1 तम्मि (त) 7/1 स काले (काल) 7/1

144 तमं[2] (तम) तमेणेव [(तमेण)+(एव)] तमेण (तम) 3/1 एव (अ)=ही उ (अ)=और जे (ज) 1/1 सवि असीले (असील) 1/1 वि सया (अ) =सदा दुही (दुहि) 1/1 वि विप्परियासुवेई [(विप्परियास)+(उवेई)] विप्परियास (विप्परियास) मूल शब्द 2/1 उवेई[3] (उवे) व 3/1 सक संधावई[4] (सं-धाव) व 3/1 सक नरग-तिरिक्खजोणिं [(नरग)-(तिरिक्ख)-(जोणि) 2/1 मोणं (मोण) 2/1 विराहेत्तु (विराह) सकृ असाहुरूवे[5] [(असाहु)-(रूव) 1/1 वि]

---

1. छन्द की मात्रा के लिए 'इ' को 'ई' किया गया है।
2. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण : 3-137)।
3. पूरी या आधी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियाओं में बहुधा 'ई' हो जाता है (पिशल, प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 138)।
4. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।
5. समास के अन्त के रूप→रूव का अर्थ होता है 'बना हुआ' (आप्टे संस्कृत-हिन्दी कोश)।

145. न (अ) = नहीं तं (त) 2/1 सवि अरी (अरि) 1/1 कंठछेत्ता [(कंठ-छेत्तृ) 1/1 वि] करेइ (कर) व 3/1 सक जं (ज) 2/1 सवि से (अ) = वाक्य की शोभा करे (कर) व 3/2 सक अप्पणिया (अप्पणिय) 1/2 वि दुरप्पा (दुरप्प) 1/2 से (त) 1/1 सवि णाहिई[1] (णा) भवि 3/1 सक मच्चुमुहं [(मच्चु)-(मुह) 2/1] तु (अ) = पादपूर्ति पत्ते (पत्त) भूकृ 1/1 अनि पच्छाणुतावेण (पच्छाणुताव) 3/1 दयाविहूणो [(दया-(विहूण) 1/1 वि]

146. तुट्ठो (तुट्ठ) भूकृ 1/1 अनि य (अ) = बिल्कुल सेणिओ (सेणिअ) 1/1 राया (राय) 1/1 इणमुदाहु [(इणं)+(उदाहु)] इणं (इम) 1/2 सवि उदाहु (उदाहु) भू 3/1 सक अनि कयंजली ([कय) + (अंजली)] [(कय) भूकृ अनि-(अंजलि) 2/2] अणाहत्तं (अणाहत्त) 1/1 जहाभूयं (अ) = यथार्थतः सुट्ठु (अ) = अच्छी तरह से मे (अम्ह) 3/1 स उवदंसियं (उवदंस) भूकृ 1/1

147. तुज्झ[2] (तुम्ह) 6/2 स सुलद्धं (सु-लद्ध) भूकृ 1/1 अनि खु (अ) = सचमुच मणुस्सजम्मं [(मणुस्स)-(जम्म) 1/1] लाभा (लाभ) 1/2 सुलद्धा (सु-लद्ध) भूकृ 1/2 अनि य (अ) = तथा तुमे (तुम्ह) 3/1 स महेसी (महेसि) 8/1 तुब्भे (तुम्ह) 1/2 स सणाहा (सणाह) 1/2 य (अ) = और सबन्धवा (स-बन्धव) 1/2 वि जं (अ) = चूंकि भे (तुम्ह) ठिया (ठिय) भूकृ 1/2 अनि मग्गे (मग्ग) 7/1 जिणुत्तमाणं [(जिण)-(उत्तम)[3] 6/2

1. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।
2. कभी कभी तृतीया के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण, 3-134)
3. कभी कभी षष्ठी का प्रयोग सप्तमी के स्थान पर पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण, 3-134)।

148. तं (तुम्ह) 1/1 स सि (अस) व 2/1 अक नाहो (नाह) 1/1 अणाहाणं (अहाण) 6/2 सव्वभूयाण [(सव्व) वि-(भूय) 6/2] संजया (संजय) 8/1 खामेमि (खाम) व 1/1 सक ते (तुम्ह) 3/1 स महाभाग (महाभाग) 8/1 वि इच्छामि (इच्छा) व 1/1 सक अणुसासिउं[1] (अणुसास) हेकृ (कर्मवाच्य)

149. पुच्छिऊण (पुच्छ) संकृ मए (अम्ह) 3/1 स तुब्भं (तुम्ह) 6/1 स झाणविग्घो [(झाण)-(विग्घ 1/1] उ (अ)=तो जो (ज) 1/1 सवि कओ (कअ) भूकृ 1/1 अनि निमंतिया (निमंत) भूकृ 1/1 य (अ) और भोगेहि[2] (भोग) 3/2 तं (त) 2/1 सवि. सव्वं (सव्व) 2/1 वि मरिसेहि (मरिस) विधि 2/1 अक मे (अम्ह) 3/1 स

150. एवं (अ)=इस प्रकार थुणित्ताण (थुण) संकृ स (त) 1/1 सवि रायसीहो[3] [(राय)—(सीह) 1/1] अणगारसीहं [(अणगार)—
स्त्री
(सीह) 2/1] परमाए (परम→परमा) 3/1 भत्तिए[4] (भत्ति) 3/1 सओरोहो (स-ओरोह) 1/1 सपरिजणो (स-परिजण) 1/1 य (अ)=और धम्माणुरत्तो [(धम्म)+(अणुरत्तो)] [(धम्म)

---

1. 'इच्छा' के योग में हेकृ का प्रयोग होता है। हेकृ का कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य का एक ही रूप होता है।
2. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत व्याकरण : 3-137)
3. समास के अन्त में 'सीह' का अर्थ होता है 'प्रमुख'. (आप्टे : संस्कृत-हिन्दी कोश)
4. प्राकृत में विभक्ति जुड़ते समय दीर्घ स्वर बहुधा कविता में ह्रस्व हो जाते हैं (पिशल प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 182)।

-(मण-रत्त) 1/1 वि] विमलेण (विमल) 3/1 चेयसा (चेय) 3/1.[1]

151. ऊससियरोमकूवो [(ऊससिय) वि-- (रोमकूव) 1/1] काऊण (काऊण) संकृ अनि. य (अ)=पादपूरक पयाहिणं (पयाहिण) 2/1 अभिवंदिऊण(अभिवंद) संकृ सिरसा (सिर) 3/1 अतियाओ (अति-याअ) भूकृ 1/1 अनि नराहिवो (नराहिव) 1/1

152. इयरो (इयर) 1/1 वि वि (अ)=भी गुणसमिद्धो [(गुण)-- (समिद्ध) भूकृ 1/1 अनि] तिगुत्तिगुत्तो [(तिगुत्ति)—(गुत्त) 1/1 वि] तिदंडविरओ [(तिदंड)—(विरअ) 1/1 वि] य (अ) =और विहग (विहग) मूलशब्द 1/1 इव (अ)=की तरह विप्पमुक्को (विप्पमुक्क) भूकृ 1/1 अनि विहरइ (विहर) व 3/1 सक वसुहं (वसुहा) 2/1 विगयमोहो [(विगय) भूकृ अनि-(मोह) 1/1]

---

1. अर्धमागधी में 'सा' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है।

उत्तराध्ययन चयनिका एवं उत्तराध्ययन
सूत्र क्रम

चयनिका क्रम	उत्तराध्ययन सूत्र क्रम	चयनिका क्रम	उत्तराध्ययन सूत्र क्रम	चयनिका क्रम	उत्तराध्ययन सूत्र क्रम
1	2	19	117	37	263
2	12	20	118	38	276
3	14	21	119	39	291
4	15	22	120	40	292
5	16	23	121	41	294
6	17	24	122	42	316
7	25	25	125	43	318
8	29	26	143	44	326
9	37	27	144	45	329
10	38	28	145	46	330
11	97	29	162	47	331
12	102	30	167	48	332
13	103	31	172	49	351
14	104	32	213	50	353
15	105	33	217	51	357
16	106	34	224	52	427
17	107	35	225	53	428
18	108	36	262	54	429

उत्तरज्झयणाइं (उत्तराध्ययन सूत्र) (श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई) 1977
संपादक : मुनि श्री पुण्यविजयजी एवं श्री अमृतलाल मोहनलाल भोजक

चयनिका क्रम	उत्तराध्ययन सूत्र क्रम	चयनिका क्रम	उत्तराध्ययन सूत्र क्रम	चयनिका क्रम	उत्तराध्ययन सूत्र क्रम
55	430	76	1118	97	1335
56	437	77	1119	98	1340
57	454	78	1125	99	704
58	455	79	1126	100	705
59	456	80	1127	101	706
60	465	81	1132	102	707
61	466	82	1147	103	708
62	468	83	1150	104	709
63	480	84	1181	105	710
64	481	85	1182	106	711
65	483	86	1236	107	712
66	484	87	1237	108	713
67	485	88	1241	109	714
68	695	89	1242	110	715
69	904	90	1246	111	716
70	909	91	1253	112	717
71	991	92	1254	113	718
72	992	93	1256	114	719
73	993	94	1258	115	720
74	1055	95	1333	116	721
75	1110	96	1334	117	722